पञ्चमोऽङ्कः २०१८-१९
संस्कृतसाहित्यसंवर्धनपरा वार्षिकी शोधपत्रिका

ISSN 2349-851X

साहित्यसमाख्या
SĀHITYASAMĀKHYĀ

Peer-Reviewed International Research Journal for the Study of Sanskrit Sahitya

Vol. - 05   2018 - 19



साहित्यविभागः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
राष्ट्रियमूल्याङ्कनप्रत्यायनपरिषदा 'ए' श्रेण्या प्रत्यायितम्
(मानितविश्वविद्यालयः) लखनऊपरिसरः

RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
(DEEMED UNIVERSITY), LUCKNOW CAMPUS
(Accredited 'A' Grade by 'NAAC')
Under the Ministry of Human Resources Development Govt. of India





अखिलभारतीय-साहित्यशास्त्र-प्रशिक्षणवर्गकार्यक्रमस्य उद्घाटनसमारोहः

ISSN: 2349-851X

संस्कृतसाहित्यसंवर्धनपरा वार्षिकशोधपत्रिका

साहित्यसमाख्या

SĀHITYASAMĀKHYĀ

Peer-Reviewed International Research Journal for the Study of Sanskrit Sahitya

अङ्कः ५ वर्षम् २०१८-२०१९ Vol. 05 YEAR 2018-2019

प्रधानसम्पादकः
प्रो. विजयकुमारजैनः, प्राचार्यः

मुख्यसम्पादकः
प्रो. रामलखनपाण्डेयः

सम्पादकः
डॉ. पवनकुमारः



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
(DEEMED UNIVERSITY)
(Accredited 'A' Grade by 'NAAC')
Under the Ministry of Human Resource Development,
Govt. of India

साहित्यसमाख्या

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन वित्तपोषिता लखनऊपरिसरस्य
संस्कृतसाहित्यसंवर्धनपरा वार्षिकी शोधपत्रिका

ISSN: 2349-851X

प्रकाशक:

प्राचार्य:, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानपरिसर:, विशालखण्ड:-4,
गोमतीनगरम्, लखनऊ-226010, उत्तरप्रदेश:
दूरभाष: 0522-2393748
वेबसाइट: www.sanskrit.nic.in
ईमेल: rskslucknow@yahoo.com

पञ्चमोऽङ्क:

प्रकाशनवर्षम्- वि.सं. 2075, खीस्ताब्द: 2018-19

मुद्रक:

पनार ऑफसेट, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ-226001

SĀHITYASAMĀKHYĀ

(Peer-Reviewed International Research Journal for the Study of Sanskrit Sahitya)

ISSN: 2349-851X

Publisher:

Principal, Rashtriya Sanskrit Sansthan (Deemed University), Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow-226010 (U.P.)
Website: www.sanskrit.nic.in
E-mail: rskslucknow@yahoo.com

Volume - 5
Year 2018-2019

Printer:

PNAR Offset, 17-Ashok Marg, Lucknow-226001

सम्पादकीयम्

साहित्यसमाख्या प्रस्तुतेन पञ्चमाङ्केन स्वकं पञ्चमाब्दमपि प्रपूरयतीति हर्षप्रकर्ष एव। यतो हि बालारिष्टयोगादिव विघ्नप्रकरैर्बाध्यमानापि संस्कृतशोधपत्रिकेयं सम्प्रति निजात्मबलेनैव पदात्पदमादधाति। साहित्यिके जगति शोधपरम्परायां देशकालोचितां प्रत्यग्रतामानेतुं बाह्यमाभ्यन्तरिकञ्च तन्त्रं यथा सुदृढं स्यात्तथा कश्चन प्रयासोऽद्यापि यथावदेव वरीवर्ति। सम्पादक: डॉ. पवनकुमारस्तत्र यथायोगमाचरितुं स्वतन्त्रधिया सन्नह्यत इति शुभमाशासे।

अस्मिन्नङ्के पञ्चदश शोधलेखा यथायथं विषयमधिकृत्य प्रकाशन्ते। प्रो. ब्रजेशकुमारशुक्लस्य न्यासयोगदर्शनम्, प्रो.सदाशिवकुमारस्यालङ्कारात्मवादे क्रान्तिपञ्चकम्, डॉ. भुवनेश्वरीनिदर्शिता: श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाग्रन्थविशेषाश्चेति संस्कृते ध्यानमाकर्षन्ति। वैदिकपृष्ठभूमौ नैतिकचिन्तनमधिकृत्य कृते डॉ. पूजाव्यासवर्याया हिन्दीलेखे भारतीया संस्कृतिसन्नीयते। डॉ. कविता बिसारिया हास्यमादाय प्राच्यपाश्चात्यदृष्टिमांग्लभाषया सम्यगुन्मीलयति। अन्येऽप्यनुसन्धानात्मकलेखा: पठनीया: सन्ति।

शोधलेखकेभ्य: साहित्यसमाख्यापक्षत: शतश: साधुवादा: सन्ति। अग्रेऽपि स्वलेखप्रदानेनानुगृहणातुं सुधिय: सप्रश्रयमनुरुध्यन्ते। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य कुलपतय: कुलसचिवाश्च वित्तीयव्यवस्थायै लखनऊ-परिसरस्य प्राचार्यश्चापि प्रकाशकीयव्यवस्थायै साधु संस्मर्यन्ते।

डॉ. रामलखनपाण्डेय:
मुख्यसम्पादक:

विषयानुक्रमणिका

	सम्पादकीयम्		iii
1.	न्यासयोगदर्शनम्	प्रो. बृजेशकुमारशुक्लः	1
2.	भक्तेः रसत्वम्	प्रो. बनमाली बिश्वालः	5
3.	साहित्यशास्त्रस्य अलङ्कारात्मवादे क्रान्तिपञ्चकम्	प्रो. सदाशिवकुमारो द्विवेदी	26
4.	काव्यप्रकाशमङ्गलश्लोके काश्मीर-शैवदर्शनसिद्धान्तः	डॉ. पवनकुमारः	46
5.	वैदिकवाङ्मये शिक्षादर्शनस्याव-धारणा	प्रो. रामसुमेरयादवः	49
6.	सर्वशास्त्रविशारद आचार्यमम्मटः	डॉ. भुवनेश्वरी भारद्वाज	58
7.	साहित्यशास्त्रे रससूत्रविमर्शः	डॉ. संदीपकुमारमिश्रः	62
8.	सौन्दरनन्दकाव्ये महायानमतमीमांसा	अमियकृष्णमिश्रः	67
9.	कालिन्दीकाव्यसंग्रहस्य तत्कर्तुश्च परिचयः	डॉ. बृजेशकुमारत्रिपाठी अमियकृष्णमिश्रः	71
10.	भारतीय-दर्शन में वेद का महत्त्व तथा नैतिक-चिंतन के विकास में उसका योगदान	डॉ. पूजा व्यास	76
11.	योगदर्शन में प्रतिपादित 'समाधि' की समीक्षा	डॉ. करूणानन्द मुखोपाध्याय	83
12.	रसो वै सः	डॉ. रीता तिवारी	89
13.	काव्यास्वादन का आधुनिक उन्मेष	सतीश चन्द्र	92
14.	The Themes of Comedy (In Special Reference to Shakespeare and Sanskrit Scholars)	Dr. Kavita Bisaria	96
15.	श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाग्रन्थस्य केचन विशेषाः	डॉ. भुवनेश्वरी भारद्वाज	101

न्यासयोगदर्शनम्

प्रो. बृजेश कुमार शुक्ल,
निदेशक,
अभिनवगुप्त इंस्टीट्यूट ऑफ ऐस्थेटिक्स
एण्ड शैवफिलासफी, लखनऊ विश्वविद्यालय

श्रीवैष्णव आगमों में मोक्षप्राप्ति के उपाय के रूप में न्यासयोग की विशिष्ट चर्चा की गई है। आचार्य पतञ्जलि के अनुसार यदि चित्तवृत्ति का निरोध योग है तो वैष्णवागमदर्शन में चित्तवृत्ति को ईश्वर में न्यस्त करना न्यास योग है। इसे निक्षेप, न्यास, सन्यास, त्याग, शरणागति या प्रपत्ति के नाम से भी जाना जाता है। यथा लक्ष्मीतन्त्र का वचन है:-

निक्षेपापरपर्यायो न्यासः पञ्चाङ्गसंयुतः।
सन्यासस्त्याग इत्युक्तः शरणागतिरित्यपि।। (लक्ष्मीतन्त्र 17/75)

जीव का ब्रह्म अथवा ईश्वर में ऐसा विश्वास हो जाय कि मैं अपराधों का आलय हूँ, अनन्य गति तथा अकिञ्चन हूँ। मेरे लिए ईश्वर ही एकमात्र उपायभूत है ऐसी प्रार्थना की बुद्धि ईश्वर में यदि अनन्य भाव से की जाय तो इसे शरणागति कहते हैं:-

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः।
त्वमेवोपायभूतो में भवेति प्रार्थनामतिः।।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम्।। (अहिर्बुध्नसंहिता 37/30/31)

आचार्यों ने शरणागति अथवा प्रपत्ति को रामायण तथा महाभारत के श्लोक चरममन्त्र से अधिगत किया है। रामायण में यह मन्त्र विभीषण की शरणागति में भगवान् राम के द्वारा कहा गया है-

सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।। (रामायणे युद्धकाण्डे 18/33)

महाभारत के श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से सभी धर्मों को त्याग कर प्रपत्ति लेने की बात कहते हैं और उससे मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं:-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (श्रीमद्भगवद्गीता 18/66)

न्यासयोग अथवा प्रपत्ति स्वरूपः-

भरद्वाज संहिता में लिखा गया है कि कोई प्रपन्न होने की इच्छा से अनन्यसाध्य इष्टफल का साधन निश्चित होने पर परमात्मा में आत्मसमर्पण करता है तो इसे ही न्यासयोग अथवा प्रपत्ति के नाम से जाना जाता है। जैसा कि कहा गया है-

निश्चितेऽनन्यसाध्यस्य परत्रेष्टस्य साधने।
अयमात्मभरन्यासः प्रपत्तिरिति चोच्यते॥ (भरद्वाजसंहिता 1/7)

आचार्य लोकाचार्य के द्वारा रचित श्रीवचनभूषण ग्रन्थ में भी इस प्रपत्ति के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया है कि फल प्राप्ति के साधन में अपनी असहिष्णुता ही प्रपत्ति का स्वरूप है-

अस्याः स्वरूपं स्वासहिष्णुत्वम्। (श्रीवचनभूषण सूत्र संख्या 61)

न्यासयोग में अभिसिक्त जीव केवल अपने को ही नहीं अपितु किसी भी चेतन को उपाय योग्य नहीं समझता है। अतः अनन्यभाव से ईश्वर की शरण में पहुँचता है। वात्स्यवरदाचार्य के 'प्रपन्नपारिजात' में प्रपत्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि प्राप्य की इच्छा वाले तथा उपाय रहित जीव की दृढ़बुद्धि यदि भगवत्प्रार्थना में पर्यवसित हो जाय तो यह प्रपत्ति का स्वरूप होता है-

बुद्धिरध्यवसायात्मा याञ्चापर्यवसायिनी।
प्राप्येच्छोरनुपायस्य प्रपत्ते रूपमिष्यते॥ (प्रपन्नपारिजात 2/1)

न्यासयोग के षडङ्गः-

अहिर्बुध्न्युसंहिता, श्रीप्रश्नसंहिता, लक्ष्मीतन्त्र, तथा भरद्वाजसंहिता में न्यासयोग अथवा प्रपत्ति के छः अङ्ग बतलाये गये हैं-

1. अनुकूलता का संङ्कल्प।
2. प्रतिकूलता का वर्जन।
3. ईश्वर रक्षा करेगा, ऐसा विश्वास।
4. गोप्ता का वरण।
5. आत्मनिक्षेप।
6. कार्पण्य।

आनुकूल्यस्यसङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासं गोप्तृत्ववरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥ (अहिर्बुध्न्यसंहिता 2/36/26-27)

प्रपत्ति के भेदः-

अनेक प्रकार से न्यास अथवा प्रपत्ति के भेद किये गये हैं। प्रपत्ति दो प्रकार की है-

आर्त्तप्रपत्ति तथा दृप्तप्रपत्ति। गुण भेद से प्रपत्ति के तीन प्रकार हैं:-

1. तामसी प्रपत्ति
2. राजसी प्रपत्ति
3. सात्विकी प्रपत्ति

इसी प्रकार करणत्रयभेद से प्रपत्ति तीन प्रकार की है-

1. कायिकी प्रपत्ति
2. वाचिकी प्रपत्ति
3. मानसी प्रपत्ति

भार्गवोपपुराण में न्यास के दो भेद कहे गये हैं-

न्यासस्तु द्विविध:प्रोक्त: वाचिको मानसो मुने। (भार्गवोपपुराण 2/24)

1. वाचिक न्यास
2. मानस न्यास

मानस न्यास के दो भेद हैं-

मानसस्तु मनोनिष्ठा द्विधैव परिकीर्त्तित:।
भरन्यासस्तु तत्राद्य आत्मन्यासो द्वितीयक:॥ (भार्गवोपुराण 2/25-26)

भरन्यास में प्रपत्ति के पाँच अङ्ग 'आत्मनिक्षेप' (आत्मन्यास) को छोड़कर गृहीत होते हैं। आत्मन्यास में शेषशेषित्व भाव की प्रतिपत्ति होती है। यह गुह्यतम न्यास है। भोग शेषरूप है और भोगी शेषी कहलाता है। जीव भोगत्व होने के कारण शेषभूत है तथा ईश्वर भोगी होने के कारण शेषी कहा जाता है। विशिष्टाद्वैत दर्शन के शेषशेषित्व का बोध आत्मन्यास में होता है।

भरन्यास:- प्रपञ्च में स्थित शारीरिक धर्मों की प्रपत्ति।

आत्मन्यास:- ईश्वर में विलय (मोक्षप्राप्ति)

न्यासयोग के अधिकारी:-

न्यासयोग के सभी अधिकारी हैं। श्रीवचभूषण में तीन अधिकारी कहे गये हैं:-

1. अज्ञ
2. ज्ञानी
3. भक्ति के वशीभूत रहने वाले।

प्रपत्ति के लिए जाति, कुल, लिङ्ग, गुण, क्रिया, देशकाल, अवस्था आदि का विचार नहीं किया जाता है।

ब्रह्मक्षत्रविश: भूदा: स्त्रियश्चान्तरजातय:।
सर्व एव प्रपद्येरत् सर्वधातारमच्युतम्॥ (भरद्वाजसंहिता 1/15)

द्रौपदी ने स्नान करके प्रपत्ति नहीं की थी तथा अर्जुन ने नीचों के मध्य प्रपत्ति के योग को सुना था-

''द्रौपदी स्नाता न खलु प्रपत्तिमकरोत् अर्जुनो नीचमध्येऽमुमर्थमशृणोत्।''

(श्रीवचनभूषण सूत्र-32)

प्रपत्ति में शुद्धाशुद्ध का विचार नहीं किया जाता है। पशु-पक्षी तथा स्थावर भी इसके अधिकारी हैं। प्रपत्ति के द्वारा विचित्र फलों की प्राप्ति की जा सकती है- धर्मपुत्रादीनां फलं राज्यम्, द्रौपद्या: फलं वस्त्रम्। प्रपत्तिदर्शन ऐहिक तथा आमुष्मिक फल को प्रदान करने में सक्षम है।

अविद्या (माया) में बहुकाल तक भोग करने वाला व्यक्ति जब ब्रह्म के सम्मुख होकर अनन्य भाव से न्यासयोग का वरण करता है तो शीघ्र ही वह उसी ब्रह्म में लयत्व को प्राप्त हो जाता है। न्यासयोग या प्रपत्ति का प्रयोजकत्व मोक्ष की प्राप्ति है। इसीलिए आचार्य रामानुज ने भी कहा है कि संसार से मुक्ति बिना भगवत्प्रपत्ति के सम्भव नहीं है-

एतेषां संसारमोचनं भगवत्प्रपत्तिमन्तरेण नोपपद्यते। (वेदार्थसङ्ग्रह-पृ. 160)

ज्ञान-कर्म-भक्ति मार्ग से व्यतिरिक्त प्रपत्ति का मार्ग है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि भक्ति के समान ही प्रपत्ति भी भगवत्प्रसादन में वैशिष्ट्य रखती है-

भक्तिवत्प्रपत्तिरपि प्रसादन विशेष:। (शरणागतिगद्य-भाष्य पृ. 121)

मोक्ष प्राप्ति के अन्य ज्ञान तथा भक्ति आदि साधनभूत है तथा वे उपायों से मुक्त नहीं है। परन्तु वह न्यासयोग अथवा शरणागति योग उपाय एवं उपायों से मुक्त है तथा मध्यम स्थिति वाला है। यह शरणागति संसार रूपी समुद्र से पार कराने में अग्रगण्य है-

उपायापायनिर्मुक्ता मध्यमां स्थितिमास्थिता।
शरणागतिरग्र्यैषा संसारार्णवतारिणी॥ (श्रीवचनभूषण की टीका पृ. 143)

इस प्रकार इस न्यासयोग अथवा प्रपत्ति को जो लोग ग्रहण करके भगवत्सान्निध्य प्राप्त करते हैं, वे एक ही बार में परमगति अर्थात् मोक्ष को अधिगत कर लेते है-

तदुक्तं न्यासयोगं तं ये गृह्णान्ति जना भुवि।
सकृद्गृहीतमात्रेण यान्त्येव परमां गतिम्॥ (भार्गवोपपुराणे 1/56)

इस प्रकार वैष्णवागम दर्शन के अन्तर्गत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के पल्लवन के साथ ही साथ न्यासयोग अथवा प्रपत्ति दर्शन का अद्भुत विवेचन दृष्टिगत होता है जो कैवल्य प्राप्ति या भगवत्सायुज्य की प्राप्ति का साधनोपायमुक्त सोपान है।

भक्तेः रसत्वम्

प्रो. बनमाली बिश्वालः
व्याकरण विभागाध्यक्षः,
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान,
रघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः

प्रस्तावना- भक्तेः रसत्वं भावत्वं वेति प्रसङ्गे विद्वत्सु महान् मतभेदो दृश्यते। अतः भक्तेः रसत्वनिरूपणावसरे सर्वादौ रस-भावयोः को भेदः इति ज्ञातव्यो भवति। यत्र रति-हास-शोकादयः स्थायिनो भावाः विभावादिभिः संयोगं प्राप्नुवन्ति तदा ते रसरूपेण अभिव्यज्यन्ते। तद्विपरीतं यत्र च उपयुक्त-सामग्रीणामभावे रति-हास-शोकादयः स्थायिभावाः उद्बुद्धास्तिष्ठन्ति तदा ते रससंज्ञया अभिहिताः न भवन्ति किन्तु भावसंज्ञया एवाभिहिताः भवन्ति। रसविषये विशेष-चर्चायाः पूर्वं सूचीकटाहन्यायेन तत्र चादौ काव्यशास्त्रे भावस्य का स्थितिरिति विचारणीया भवति।

भावः - वस्तुतः यत्र यत्र रतिरूपः स्थायीभावः नायकनायिकासम्बद्धो नास्ति, अपि तु देवैः राजभिः गुरुभिश्च सम्बद्धोस्ति। तत्र रतिः विभावादिभिः अभीष्टसामग्रीभिः परिपुष्टा सत्यपि रसरूपेण अभिव्यक्ता न मन्यते किन्तु भावरूपेण अभिव्यक्ता मन्यते। वस्तुतः यत्र निर्वेद-ग्लानि-शङ्कादयः सञ्चारीभाव-प्रधानताभिः व्यञ्जितास्तिष्ठन्ति तदा ते भावसंज्ञकाः भवन्ति। भावशब्दस्य व्युत्पत्तिद्वयं सम्भवति-

1. भवतीति भावः इति भाव-शब्दस्य प्रथमा व्युत्पत्तिः। एतया व्युत्पत्त्या कविगतो भावो बुध्यते। नाट्यशास्त्रे भरतमुनिनाऽप्युक्तम् -''कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते" इति।

2. भावयन्ति इति भावः इति भाव-शब्दस्य द्वितीया व्युत्पत्तिः। अनया च व्युत्पत्त्या विभावानुभावादयो गृह्यन्ते। तद् यथा मम्मटेन काव्यप्रकाशे देवादिविषया रतिः भावत्वेनाभिहिता। तत्र च तस्या रसत्वं खण्डयित्वा तेन भावत्वं प्रतिपादितम् -

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाश्रितः। भावः प्रोक्तः।[1]

एवमेव भक्तिरसायनेऽपि तादृशो विचारो द्रष्टुं शक्यते -

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।
भावः प्रोक्तः रसो नेति यदुक्तं रसकोविदैः॥

देवान्तरेषु जीवत्वात् परानन्दप्रकाशनात्।

तद् योज्यं परमानन्दरूपे न परमात्मनि।।[2]

विश्वनाथेनापि साहित्यदर्पणे भावस्य परिभाषा एवं कृता वर्तते -

सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः।

उद्‌बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते।।[3]

अमरकोषेऽपि भावः मानसो विकार इत्युच्यते - विकारो मानसो भावोऽनुभावो भावबोधकः[4] । स च भावः चतुर्धा विभक्तः - विभावः, अनुभावः, व्यभिचारीभावः (सञ्चारीभावः) स्थायीभावश्चेति।

वस्तुतः भावा रसानुत्पादयन्ति। रसाश्च भावान् निर्मान्ति। अभिनवभारत्यामभिनवगुप्तो वदति-भावा रसाश्चान्योन्यं भावयन्ति। भावा रसान् भावयन्ति निष्पादयन्ति। रसास्तु भावान् भावयन्ति, भावान् कुर्वन्ति, भावादिव्यपदेशान् कुर्वन्ति[5]।

आभासः (रसाभासः, भावाभासः) - आभासः रसेन भावेन च युज्यते। अत एव रसाभास-भावाभास-पदयोः प्रयोगो दृश्यते। यदा च आलम्बनं रसभावानुरूपं न भवति तदा रसाभासः कथ्यते। उदाहरणार्थं यदा काचित् नायिका युगपत् नैकेषु नायकेषु संलग्ना भवति तदा रसाभासो भवति। एवमेव तिरश्चां शृङ्गारः अपि रसाभासः इति कथ्यते। रसाभासोपि विभिन्नरसानां स्थायिनाञ्च आभासाः भवन्ति ये सम्बद्धैः विभावैः सम्पर्किताः सन्ति।

इदानीं भक्तेः वास्तविकीं पृष्ठभूमिमवगन्तुं रसविषये विशिष्टा चर्चा आवश्यकी।

रसः - रससिद्धान्तस्य प्रवर्तकः भरतः (यस्य समयः ई.पू. द्वितीयशताब्दात् द्वितीयशताब्दं यावत् स्वीक्रियते) नाटयशास्त्रे न केवलं रसेभ्यः किन्तु भावेभ्यः सहृदयेभ्यः अपि प्राधान्यं प्रददाति। भारतीयकाव्यशास्त्रे रसः काव्यस्य मुख्यं तत्त्वं भवतीति प्रतिपादितं वर्तते। काव्यमीमांसायाम् आचार्यः राजशेखरः 'रस आत्मा' इत्यनया उक्त्या रसं काव्यात्मारूपेण प्रतिष्ठापयति। एवमेव आचार्यविश्वनाथेन अपि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इति वदता काव्येषु रसस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्[6] ।

रस-धातोः रसशब्दः द्विधा निष्पद्यते - घ-प्रत्यययोगेन (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण)[7] तथा अच्-प्रत्यय-योगेन (पचाद्यच्) च। ताभ्यां प्रत्ययाभ्यां रस-शब्दः एवं व्युत्पादयितुं शक्यते -

1. रसयति इति रसः
2. रसयते इति रसः (अच्)
3. रस्यते आस्वाद्यते अनेन इति रसः (घ)

4. रसते इति रसो वा ।

संस्कृतवाङ्मये रसशब्दः बहुष्वर्थेषु प्रयुक्तः। तद् यथा -

रसः	सोमरसः	सोम इन्द्रियो रसः
रसः	स्वादः	स्वादु रसो मधु पेयो वराय
रसः	धातुः	रसाच्छोणितं, शोणितान्मांसम्[8] (आयुर्वेदे)
रसः	रतिः	रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः[9] (कामशास्त्रे)
रसः	ब्रह्म	यद् वै तत् सुकृतं, रसो वै सः, रस एवायं लब्ध्वानन्दीभवति[10]।

उपनिषत्सु रसः ब्रह्मपदवीमधिरोहति। ब्रह्मानन्दसहोदरः इति वचनं तत्र प्रमाणत्वेन स्वीकर्तुं शक्यते।

वस्तुतः रसः आनन्दपर्यावाची। भक्तिरसे स ब्रह्मानन्दः तथा काव्यरसे च सः काव्यानन्दः कथ्यते। ब्रह्मा रसमथर्वणाद् जग्राह इति भरतः प्रतिपादयति। साहित्ये (काव्य-नाटकादिषु) किन्तु रसः सौन्दर्यभावं बोधयति। रामायणस्य करुणरसप्रसङ्गमाधारीकृत्य ध्वनिवादिभिराचार्यैरपि (ध्वन्यालोके 1.5) रसस्य काव्यात्मत्वमङ्गीकृतम् -

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥

रसनिष्पत्तिः- अयञ्च रसः कथं निष्पद्यते इत्यस्मिन् विषये विचारः आवश्यकः। वस्तुतः रसोत्पत्तिविषये भरतः सर्वप्रथमं स्वमतमुपस्थापयति- विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः[11]। तन्मतानुसारेण रत्यादयो भावाः सामान्यगुणयोगेन रसान् निष्पादयन्ति (एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पाद्यन्ते)। भरतस्य नाटयशास्त्राधारेण अभिनवगुप्तेन सर्वादौ रसं वैश्विक-काव्यशास्त्र-धरातले सिद्धान्तरूपेण प्रतिष्ठापयति। किन्तु ततः पूर्वं भट्टलोल्लट-श्रीशङ्कुक-भट्टनायक-सदृशाः केचन कश्मीर-प्रदेशीयाः एवाचार्याः स्वस्वकाव्यशास्त्रेषु रसाभिव्यक्तिविषये स्व-स्व-मतान्युपस्थापितवन्तः। उपर्युक्तानामेतेषामाचार्याणां कृतयः यद्यप्यद्य नोपलभ्यन्ते तथापि अभिनवभारत्यामभिनवगुप्तेन तेषां मतान्युल्लिखितानि सन्ति। तदनुसारं रससूत्र-प्रयुक्तयोः निष्पत्ति-संयोगपदयोः व्याख्याधारेण रसनिष्पत्तेश्चत्वारो वादाः प्रसिद्ध्यन्ति। ते च यथा -

1. **उत्पत्तिवादः** - मीमांसादर्शन-समर्थकस्य भट्टलोल्लटस्य उत्पत्तिवादः (उपचितिवादः आरोपवादो वा) यत्र संयोगस्य सम्बन्धार्थः, निष्पत्तेश्च उत्पत्त्यर्थः स्वीक्रियते। अत्र कार्यरूपस्य रसस्य विभावादयः कारणभूताः स्वीक्रियन्ते।

2. **अनुमितिवादः** - न्याय-दर्शन-समर्थकस्य श्रीशङ्कुकस्य अनुमितिवादः (प्रतीतिवादो वा) यत्र संयोगो नाम अनुमाप्य-अनुमापकभावः सम्बन्धः तथा अनुमितिश्च निष्पत्तेरर्थः स्वीक्रियते। एतन्मतानुसारं रसः राम-कृष्ण-दुष्यन्तादिमूलपात्रेषु तिष्ठति। नाट्य-द्रष्टा पाठको वा तेषु तेषु अभिनेतृषु मूलपात्राणि अनुमिनोति।

3. **भुक्तिवादः** - सांख्यदर्शन-समर्थकस्य भट्टनायकस्य भुक्तिवादः यत्र संयोगो नाम भोज्यभोजकभावः सम्बन्धः तथा निष्पत्तेरर्थश्च भुक्तिरिति स्वीक्रियते। अत्र भावकत्वं नाम साधारणीकरणं येन विभाव-स्थायीभावादयः स्वकीयमस्तित्वं नश्यन्ति। अस्य च साधारणीकृतस्य स्थायिभावस्य द्रष्टभिरुपभोगाय भोजकत्वमेव निमित्तीभूतो गुणः सिद्धयति। अत्र च रसः द्रष्टणां हृदयेऽस्तीति मन्यते।

4. **अभिव्यक्तिवादः** - वेदान्त-दर्शन-समर्थकस्य अभिनवगुप्तस्य अभिव्यक्तिवादः यत्र संयोगो नाम व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावः सम्बन्धः तथा निष्पत्तेरर्थश्च अभिव्यक्तिः स्वीक्रियते। अत्र भावकत्व-भोजकत्वयोः कार्यं व्यञ्जना-ध्वनिभ्यां निष्पाद्यते। अस्मिन् मते पुनः रत्यादयः स्थायिभावाः द्रष्टृणां चित्ते वासनारूपेण संस्काररूपेण वा सन्तीति स्वीक्रियते, ये च विभावादीनां संयोगेन अभिव्यक्ताः भवन्ति।

एषु चतुर्षु वादेषु अभिनवगुप्तस्य अभिव्यक्तिवाद एव सर्वथा पूर्णवादोऽस्ति यत्र सामाजिकानां चित्ते निविष्टेभ्यः स्थायिभावेभ्यः रसाभिव्यक्तिः स्वीक्रियते। तथा चोक्तम् अभिनवभारत्याम् -

सामाजिकानां वासनात्मकतया स्थितो रत्यादिभावो रसः।

मम्मटेनापि मतमिदं काव्यप्रकाशे समर्थितम् -

सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत्।

निर्वासनानान्तु रङ्गान्तःकाष्ठकुडयाश्मसन्निभः॥

विश्वनाथः साहित्यदर्पणे रसमलौकिकमङ्गीकरोति। तन्मते सत्त्वोद्रेकं रसस्य कारणमस्ति। रसश्च अखण्डः, स्वप्रकाशानन्दः, चिन्मयः, वेद्यान्तरस्पर्शशून्यः लोकोत्तरचमत्कारेण युक्तः ब्रह्मास्वादसहोदरो वर्तते -

सत्त्वोद्रेकादखण्ड-स्वप्रकाशानन्द-चिन्मयः।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कश्चित् प्रमातृभिः।

स्वकरवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥ [12]

यद्यपि वामन-कुन्तक-भामहानन्दवर्द्धनादिभिः विभिन्नैराचार्यैः रीत्यौचित्यालङ्कारवक्रोक्तिध्वन्यादीनां काव्यात्मत्वमङ्गीकृतं तथापि रसस्य प्राधान्यं भरतादिभिः स्वीकृतमेव। 'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' इति च भरतवाक्यं तत्र प्रमाणम्। एवमेव रुद्रटेनाप्युक्तम्- 'तस्मात् कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्'। अग्निपुराणेप्युक्तं वर्तते- वैदग्धप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। 'एवमेव भोजेन सरस्वतीकण्ठाभरणे उक्तम्-

वक्रोक्तिश्च सहोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयः।

सर्वासु ग्राहिणी तासु रसोक्तिं प्रतिजानीते॥

वस्तुतः सहृदयानां कृते एव रसानां रसत्वम्। ते एव रसस्यास्वादकाः। यतोहि ते करुणादिषु रसेष्वपि आनन्दमनुभवन्ति। उक्तञ्च साहित्यदर्पणे -

करुणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्।

सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।

वक्रोक्तिजीवितस्य पञ्चमकारिकायां काव्यप्रयोजनप्रसङ्गे कुन्तकेनाप्युक्तम्- 'तद्विदां चमत्कारो वितन्यते'। एवमेव विश्वनाथेनाप्युक्तम् - 'रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्'।

रसभेदाः - लोल्लटादीनामाचार्याणामेकं मतमेवमपि वर्तते यद् रसाः असंख्याकाः सन्ति। किन्तु प्रामुख्येन अष्टौ रसाः भवन्तीति भरतः प्रतिपादयति-

शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।

वीभत्साद्भूतसंज्ञिताश्चेत्यष्टौ नाटये रसाः स्मृताः॥[13]

रसराजः शृङ्गारः - एषु रसेषु शृङ्गाररसः श्रेष्ठ इति काव्यशास्त्रिभिः बहुधा निगदितम्। भामहः काव्यालङ्कारे प्रतिपादयति -

अनुसरितरसानां रस्यतामस्य नान्यः।

सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम्।[14]

ततोऽग्रे स वदति- शृङ्गारं विना काव्यं मन्दं नीरसञ्च भवति-

तदिति विरचनीयः सम्यगेषः प्रयत्नात्।

भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम्॥

भरतोऽपि शृङ्गार- रसस्य प्राधान्यं स्वीकरोति। अतः रससूच्यामादावेव सः शृङ्गारं स्थापयति। भोजोऽपि सरस्वतीकण्ठाभरणे वदति -शृङ्गार एव एकः रसः नान्यः। वस्तुतःशृङ्गारं विना काव्यं नीरसायते-

शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।

स एव चेदशृङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत्।

एवमेव आनन्दवर्धनोऽपि कथयति-

शृङ्गार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः।[15]

करुणस्य एकरसत्वम् - रामायणप्रसङ्गे शोकः श्लोकत्वमागतः इति आनन्दवर्धनस्य वचनं करुणरसस्य प्राधान्ये बीजभूतं वर्तते। क्रमशश्चास्य वचनस्य परिधिविस्तारः सञ्जातः। एवं तत्रशृङ्गारादीनामन्येषां रसानामपि अन्तर्भावः जातः। अत एव केचन वाल्मीकीमेव रससिद्धान्तस्य प्रतिष्ठातारं मन्वते। करुणरसस्य प्राधान्यविषये किन्तु भवभूतिः मुखरो दृश्यते। उत्तररामचरिते (3.47) तेनोक्तम्- एको रस करुण एव निमित्तभेदात्। आनन्दवर्धनोपि माधुर्यार्द्रताद्याधारेण करुणरसः शृङ्गारादिभ्यः अधिकं सुखात्मकं वर्तते इति प्रतिपादितम्। ध्वन्यालोके (2.8) तेनोक्तम् -

शृङ्गारे विप्रलम्भाख्ये करुणे च प्रकर्षवत्।

माधुर्यमार्द्रतां याति ततस्तत्राधिकं मनः॥ इति।

करुणरसः सुखात्मको दुःखात्मको वा इत्यत्रापि मतभेदो दृश्यते। आचार्यविश्वनाथेनोक्तं यदश्रुपातकारणादेतन्न मन्तव्यं यत् करुणरसो दुःखात्मकः इति। तत्र च अश्रुपाते द्रवणशीलतैव कारणं भवति (अश्रुपातादयस्तद्वत् द्रुतत्वाच्चेतसो मताः)। तत्रैव साहित्यदर्पणे (3.11) पुनस्तेनोक्तम् यत् करुणादावपि रसे परं सुखं जायते । तद् यथा -

करुणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्।

सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्॥

अतिरिक्तरसाः - एतदष्टरसातिरिक्तमन्येपि केचन रसाः परवर्तिभिः काव्यशास्त्रिभिः योजिताः। यथा शान्त-भक्ति-वात्सल्य-देशभक्ति-प्रेयादयः। कैश्चिद् ब्राह्म-कार्पण्य- प्रशान्तादयः रसाः अप्यङ्गीकृताः। एवं कैश्चिद् द्वादश, कैश्चित् त्रयोदश रसाः अङ्गीकृताः। भोजस्य शृङ्गारप्रकाशे तु विंशतिः रसाः स्वीकृताः। वी.राघवन्-महोदयः तेषां संख्या त्रयोविंशतिरिति प्रतिपादयति। किन्तु एषु चातिरिक्तेषु रसेषु शान्त-भक्ति-वात्सल्य-रसाः एव प्रामुख्यं भजन्ति।

शान्तरसः - शान्तरसस्य पृथग्रसत्वाङ्गीकारे बहवः आचार्याः स्व-स्व-युक्तीश्च उपस्थापितवन्तः। तेषु अभिनवगुप्त-मम्मटादयः प्रमुखाः सन्ति। मम्मटः स्पष्टशब्देन शान्तस्य नवमरसत्वमुद्घोषयति-

निर्वेदः स्थायीभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।

भरतोऽपि शान्तस्य नवमरसत्वविषये नाटयशास्त्रे एतदुक्त्वा सङ्केतं कृतवान् यद् रत्यादयः समे स्थायिभावाः शान्तादेव सम्भवन्ति-

स्वं स्वं निमित्तमादाय शान्ताद् भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापायेव शान्त एवोपजायते॥

ततश्चाग्रे सः वदति - अतः शान्तरसः सम्भवति। एवं षष्ठदशकाद् दशमशताब्दं यावत् शान्तस्य पृथग्रसत्वस्वीकारप्रसङ्गे पक्षे विपक्षे च बहुविधाः युक्तयः समुपस्थापिताः आचार्यैः। कदाचित् शान्तस्य रसत्वं भवेदपि, किन्त्वयं शान्तरसः योगीनामात्मानुभूतिजन्यानन्दात् सर्वथा भिन्नः।

वात्सल्यरसः - एवमेव वात्सल्यस्य पृथग्रसत्वप्रसङ्गेऽपि पक्षे विपक्षे च युक्तयः समुपलभ्यन्ते। इदम्प्रथमतया भोजेन शृङ्गारप्रकाशे[16] तथा श्रीकृष्णेन च वात्सल्याख्यस्य दशमरसस्य पक्षे युक्तीः उपस्थापितवन्तौ। तत्र च श्रीकृष्णेन प्रतिपादितम्-

अन्ये तु करुणस्थायी वात्सल्यं दशमोऽपि वा।

प्रेयोरसः - रुद्रटेन प्रेयसः अपि दशमरसत्वमङ्गीकृतम्। तन्मते प्रेयोवात्सल्ययोर्नास्ति भिन्नता। एवं तेनापि शान्तस्य रसत्वमङ्गीकृतम्। कर्णपूरगोस्वामिनः मतानुसारं भोजः प्रेयोवात्सल्ययोः भिन्नत्वमङ्गीकृत्य एकादश रसान् स्वीकरोति। तद् यथा तेनोक्तम् -

भोजस्तु वत्सल-प्रेयाभ्याम् एकादश रसान् आचष्टे।

किन्तु विश्वनाथो वदति यद् वत्सलस्य रसत्वं स्यात् परन्तु स दशमो रसो नास्ति। अर्थात् स तस्य पृथग्रसत्वं नाङ्गीकरोति-

वत्सलस्तु रस इति तु न स दशमो मतः[17]

अभिनवगुप्तश्च अस्य वत्सलस्य भये अन्तर्भावमिच्छति। तेनोक्तम् -

वात्सल्यं मातापित्रादौ स्नेहो भये विश्रान्तः। इति।

भक्तेः रसत्वम् - भरतात् मम्मटं यावदाचार्याः भक्तिं स्वतन्त्ररसं न मन्वते। विश्वनाथोऽपि यद्यपि वात्सल्यनामकं नूतनं रसं स्वीकरोति तथापि भक्तिं स्वतन्त्ररसत्वेन नाङ्गीकरोति। पण्डितराजः यद्यपि स्वतन्त्ररूपेण भक्तेः अस्तित्वं स्वीकरोति तथापि परम्परानुसारं नवसंख्याकान् रसानेव स्वीकरोति।

तन्मतानुसारेण यद्यपि भक्तेः शान्तरसे अन्तर्भावः न सम्भवति तथापि तस्य पृथग्रसत्वेन परिगणनं नैव समीचीनम्। अतस्तेन भक्तेः भावत्वमङ्गीकृतम्। कदाचित् भामहस्य प्रेयस-रस-विवेचनाधारेण भक्तिरसस्य विकासः स्वीकरणीयः। यतो हि प्रेयसाख्ये अलङ्कारे येषां भावानां समावेशो भवति तत्र पुत्रविषयकरतिवद् देवादिविषयकरतेरपि स्वीकरणं सम्भवति।

वस्तुतः भक्तेः रसत्वस्वीकारे विशेषाग्रहः भक्तिशास्त्रे एवाभूत्। भागवतपुराणे शाण्डिल्यभक्तिसूत्रे, भक्तिरसायने, हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ च एतदर्थं विशेषः यत्नः दृश्यते। नाटयशास्त्रस्य व्याख्यात्रा अभिनवगुप्तेन शान्तः नवमरसत्वेन प्रतिपादितः - एवं ते नवैव रसाः पुमर्थोपयोगित्वेन रञ्जनाधिक्येन वा इयतामेवोपदेश्यत्वात्। एतदतिरिक्ता अन्ये रसाः तेन न स्वीकृताः। यतोहि तन्मातानुसारमन्ये रसाः एतष्वेवान्तर्भवन्ति। एवं भक्तावपि वाच्यमित्युक्त्वा भक्तिरसस्यापि एष्वेवान्तर्भावः तेनाभीष्टः। भक्ति-श्रद्धयोः पृथग्रसपरिगणने आवश्यकतैव नास्तीति प्रतिपादयितुं तेनोक्तमभिनवभारत्याम् - अत एवेश्वरप्रणिधान-विषये भक्तिश्रद्धे स्मृतिमति धृत्युत्साहाद्यनुप्रविष्टेभ्यः अन्यथैवायमिति न तयोः पृथग्रसत्वेन ग्रहणम्। एतत्प्रसङ्गे मम्मटः मध्यममार्गी प्रतीयते, येन अभिनवगुप्तस्य न समर्थनं कृतं न वा विरोधः। तेन व्यभिचारीभावैः पुष्टा देवताविषयिणी रतिः भावत्वेन स्वीकृता - रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः। भावः प्रोक्तः[18] । किन्तु सर्वाधिकतया स्पष्टरूपेण भक्तिरसस्य व्याख्यानं श्रीमद्भागवतमहापुराणे उपलभ्यते। श्रीमद्भागवतस्य प्रारम्भे एव भगवद्विषयकालौकिकरसस्य तथा रसिकानाञ्च वर्णनं दृश्यते। तद् यथा-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतं द्रवसंयुतम्।

पिबत भागवत-रसमालयं मुहूरहो रसिका भुवि भावुकाः॥[19]

एवमेव शाण्डिल्यभक्तिसूत्रे भक्तेः परिभाषाप्रसङ्गे उच्यते - परानुरक्तिरीश्वरे भक्तिः। रागस्वरूपत्वात् तस्य रसप्रतिपादकत्वमङ्गीकृतं वर्तते। तथा चोक्तम् - द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः। नारदभक्तिसूत्रे भक्तिः परमप्रेमरूपा स्वीकृता। अस्याश्च भक्तेः रागविरागयोः विरोधो नास्ति। अस्या उपलब्धिश्च अमृतत्वसिद्धिप्रदा तृप्तिकारिका च वर्तते। अनया च शोक-द्वेष-रत्युत्साहादीनां शमनं भवति[20]। वस्तुतः भक्तिकाव्यानाम् आह्लादकतायै का काव्यशास्त्रीया संज्ञा प्रदातव्या इत्यस्मिन् प्रसङ्गे त्रयो विकल्पाः समुपस्थिताः - प्रथमविकल्परूपेण भक्तिं स्वतन्त्रकाव्यतत्त्वरूपेण न स्वीकृत्य तस्य कस्मिंश्चिद् रसे, स्थायीभावे, सञ्चारीभावे वा अन्तर्भावं कर्तुं शक्यते। अथवा भक्तिं स्वतन्त्रकाव्यतत्त्वरूपेण स्वीकृत्य तस्य स्वतन्त्र-रसत्वमपि स्वीकर्तुं शक्यते। अथवा तस्य भावत्वं स्वीकर्तुं शक्यते।

न केवलं प्राचीनैराचार्यैः किन्तु आधुनिकैः समालोचकैरपि भक्तिविषये स्वमतान्युपस्थापितानि। वस्तुतः शृङ्गारस्यालम्बनं लौकिकं वर्तते किन्तु भक्तेः आलम्बनं अलौकिकं भवति। यथा रामकृष्णादयः

अलौकिका:। अत: भक्तिरस: सर्वश्रेष्ठोऽस्ति। प्रस्तुतप्रसङ्गे पी.वी. काणे-महोदय: रूपगोस्वामिनो मतविषये लिखति - Rupagosvami says that what is called illicit and secret love and is ordinarily condemned is the highest pinnacle of *srngara* and that the condemnation applies only to ordinary mortals and not to a completely perfect *avatara* (Krishna) who took to an incarnation to give a taste of mystic love to his devotees- हिन्दी-साहित्यस्य महाकवि: देव: अपि भक्तिरसं विमृशति। आधुनिकयुगस्य कवि: श्री हरिऔध: भक्तिरसस्य प्रबलसंस्थापको वर्तते। तन्मतानुसारं परमात्मनो नाम एव रस:। रसो वै स: इति श्रुतिरपि प्रतिपादयति। यो रसयति आनन्दयति स: रस: इति रस-शब्दस्यार्थ:। माधुर्योपासना वैष्णवेभ्य: अतीव रोचते। अत एव ते भगवदनुरागरूपां भक्तिं रसं मन्वते। अत: वत्सले तादृश: चमत्कारो नास्ति यथा भक्तौ। एवमेव हरिश्चन्द्र: भक्तिं शृङ्गारादपि चमत्कारपूर्णां मनुते। आधुनिक-समालोचकेषु कन्हैयालाल पोद्दार: भक्तिरसस्य प्रबलसमर्थको वर्तते। तेन महदाश्चर्यं प्रकटीकृतं यत् साक्ष्याभासेषु शृङ्गारादि-रसेषु चिदानन्दस्य अंशांश-स्फुरणमात्रेण रसानुभूतिर्जायते तथा स च रसत्वेनाङ्गीक्रियते किन्तु यश्च चिदानन्दात्मको भक्तिरस: तस्य रसत्वं नाङ्गीक्रियते किन्तु भावत्वमेवाङ्गीक्रियते। एवमेव क्रोध-भय-जुगुप्सादि-स्थायीभावानामपि रौद्र-करुण-भयानक-वीभत्स-रसरूपेण स्वीकृतिर्दृश्यते ये प्रत्यक्षतया सुखविरोधिन: सन्ति। निस्सन्देहं भारतीयसाहित्ये तथा तज्जीवनपृष्ठभूमौ भक्ते: रसरूपेण स्वीकृत्यभाव: सर्वथैवानुचित:, यतो हि अवतारवादिनि सगुणसाहित्ये तस्य पूर्णप्रतिपादनं वर्तते। भारतीय- प्रान्तीय-भाषासु भक्तिसाहित्यं प्राचुर्येणोपलभ्यते। हिन्दी साहित्ये मीरा-सूरदास-तुलसीदासादीनां रचनासु भक्तिरसस्य श्रेष्ठं स्वरूपं प्रस्तुतं वर्तते।

काव्यशास्त्रेषु भक्ते: स्वरूपम् - भक्ति-काव्यानां साहित्ये महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। वस्तुत: भक्तिरेव भक्तिकाव्यस्य आत्मा वर्तते। भक्ते: रसत्वस्वीकारप्रसङ्गे काव्यशास्त्रीषु पर्याप्तं मतभेदो वर्तते। स च मतभेद: अद्यापि वरीवर्ति। केचन विशेषज्ञा: भक्तिं बलपूर्वकं रसं घोषयन्ति। केचन परम्परावादिन: भक्तिं रसापेक्षया श्रेष्ठतरां प्रतिपादयन्ति। केचन भक्तिरस-शान्तरसयोर्मध्ये अभेदत्वमुपस्थापयन्ति। केचन भक्तिमलौकिकीं मत्वा तमेवाङ्गिनं रसं स्वीकुर्वन्ति तथा अन्यांश्च सर्वान् प्रधान-रसानपि तत्र समावेशयन्ति। तेषां दृष्टौ भक्तिरेव वास्तविको रस:। अन्ये च सर्वे अङ्गत्वाद् रसाभासा एव।

तत्र च का नाम भक्तिरिति जिज्ञासायाम् - ईश्वरे देवताविशेषे वा अनुराग: भक्तिरिति कथ्यते। अत: एतस्य स्थायिभाव: भगवदनुराग: इति स्वीक्रियते। दशरूपककार: धनञ्जय: सम्भवत: पूर्वधारणाभि: प्रेरित: सन् भक्तिं सामान्य-भावसंज्ञया अभिदधाति। तेन च भक्तिं हर्षनाम्नि सञ्चारीभावे, उत्साहनाम्नि स्थायीभावे वा अन्तर्भावयितुं सङ्केत: कृत: -

प्रीतिभक्त्यादयो भावा: मृगयाक्षादयो रसा:।

हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावान्न कीर्तिताः॥ [21]

अभिनवगुप्तस्य मतानुसारं भक्तेः परिगणनं पृथग्रसत्वेन न कर्तव्यम्। तन्मतानुसारेण स एव रसो भवति यः पुरुषार्थोपयोगी भवेत् तथा येन अतिशय-रञ्जना च भवेत्। अतः केवलं नव एव रसाः स्वीकर्तव्याः। किन्तु ईश्वरप्रणिधानविषयत्वाद् भक्तेः अन्तर्भावः स्मृति-धृति-मत्यादि-सञ्चारीभावेषु अथवा उत्साहाख्ये स्थायीभावे कर्तव्यः। अथवा प्रसङ्गानुकूलं भक्तिः अन्यरसानामङ्गोऽपि भवेत्। तथा चोक्तम् अभिनवभारत्याम् -

एते नवैव रसाः पुरुषार्थोपयोगित्वेन रञ्जनाधिक्येन वा इयतामेव उपदेशत्वात्।

एवमेव अपरत्र तेनोक्तम् - अत एव किन्तु ईश्वरप्रणिधानविषये भक्ति-श्रद्धे स्मृति-मति-धृत्युत्साह अन्यथैव वा अङ्गमिति न तयोः पृथग्रसत्वेन गणनम्। (अभिनवभारती) भगवद्भक्तिचन्द्रिकायां परा भक्तिः रसत्वेनाङ्गीकृता - परा भक्तिः प्रोक्ता रस इति। हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ अपि भक्तेः शास्त्रीयं विवेचनं कृतं वर्तते। तेन तत्र शान्ति-प्रीति-प्रेय-वत्सल-मधुराख्यानि भक्तेः पञ्च रूपाणि प्रतिपादितानि। एवमेव तेन शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-माधुर्याख्याः पञ्च भावाः भक्तेः मूलत्वेन स्वीकृताः। श्रेष्ठताधारेण भक्तिरसः परा-अपरा-कोटिभ्यामपि विभक्तः। श्रीरूपगोस्वामिना भक्तिरसः उज्ज्वलरसत्वेनाङ्गीकृतः - शान्त-प्रीति-प्रेयोवत्सलोज्ज्वलनामसु इति। उज्ज्वलनीलमणौ तेन भक्तेः स्वरूपमित्थं प्रतिपादितम् -

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः।

नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥

वैष्णवाचार्याः भक्तिं केवलं रसं न मन्वते अपितु तस्याः प्रधानरसत्वमङ्गीकुर्वन्ति। ते अन्य-रसानां समाहारः अस्मिन्नेव रसे मन्वते। श्रीरूपगोस्वामी भक्तिरसं रसराजशृङ्गारादपि श्रेष्ठं मनुते-

अत्रैव परमोत्कर्षः शृङ्गारस्य प्रतिष्ठितः। तथा च मुनिः बहु वार्यते यतः खलु यत्र प्रच्छन्ना कामुकत्वं च। या च मिथो दुर्लभता सा परमा मन्मथस्य कृतिः। लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके न कृष्णरस निर्यास्विदार्थमवतारिणी। एवं शृङ्गारस्यालम्बनं लौकिकं तथा भक्तेः आलम्बनम् अलौकिकम्, यथा रामकृष्णादयः। अतः स भक्तिरसः श्रेष्ठः ।

ईश्वरे परानुरक्तिः भक्तिरिति भक्तेः प्रसिद्धिः। भक्तिस्तु आदौ स्तोत्रयोग्या काचिद् भावनाऽस्तीति मतं स्वीक्रियते स्म। तत्र रसत्व-योग्यता नास्तीति मतं प्रासिद्ध्यत। वस्तुतः दशमशताब्दं यावदेषा धारणा ह्यवर्तत। नाट्यशास्त्रव्याख्यायामभिनवगुप्तः भक्तिं शान्त-सहायिकां स्वीकृतवान्। यदा शान्तस्य रसत्वं समर्थितमाचार्यैः तदा भक्तेरपि रसत्वविषये चर्चा समारभत।

एवमेव क्रमशः हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ, उज्ज्वलनीलमणौ, शाण्डिल्यभक्तिसूत्रे, नारदभक्तिसूत्रे, भगवद्भक्तिचन्द्रिकायाञ्च पराभक्तिः रसत्वेन स्वीकृता अभवत् - पराभक्तिः प्रोक्ता रसः इति। वस्तुतः शृङ्गारस्य आलम्बनं लौकिकमस्ति किन्तु भक्तेः आलम्बनमलौकिकं वर्तते।

भक्तेः स्वतन्त्ररसत्वम् - भानुदत्तेन प्रचलित-नव-रसातिरिक्ताः कतिपये अन्ये अपि रसाः स्वीकृताः। एवं तेन भक्तिः अपि स्वतन्त्ररसत्वेन स्वीकृता। किन्तु भक्तेः स्वतन्त्ररसत्वे सर्वाधिकः पृष्ठपोषकः आसीत् श्रीरूपगोस्वामी। धनञ्जयेन यद् भक्तिरसस्य सामान्यभावत्वमङ्गीकृतं, सम्भवतः तस्यैवोत्तरे श्रीरूपगोस्वामी वदति भक्तिरसः न सामान्यः किन्तु उदात्तभावो वर्तते, यतो हि भक्तस्य तन्मयता-स्थितिरेव भक्तिरस्ति।

वस्तुतः अनेन आनन्दातिरेकेन वशीभूतास्ते मोक्षाय अपि न स्पृहयन्ति। तद् यथा- अतः भक्तानां मोक्षाय न कदापि स्पृहा भवति। तन्मतानुसारं भक्तिसदृशः अनुभवसिद्धस्य तथा सहस्रगुणैरानन्दकरस्य रसस्य रसत्वेन अस्वीकारः जडवदपलापः एव। तेनोक्तं -

इहानुभवसिद्धेऽपि सहस्रगुणितो रसः।

जडेनेव त्वया कस्मादकस्मादपलप्यते॥

वस्तुतः भक्तेः स्वतन्त्ररसयोग्यता वर्तते। यतो हि तत्र विभावानुभाव-व्यभिचारीभावादयः सम्भवन्ति।

भक्तेः स्थायीभावः - मधुररतिभावः यः भक्तस्य हृदये स्थायित्वेन तिष्ठति स चात्र स्थायिभावः। स च स्थायिभावो यदा विभावानुभावव्यभिचारिभावैः संयुज्यते तदा भक्तिः रसपदवीमारोहति।[22]

एवमत्र देवप्रीतिरेव स्थायीभावः[23]।

भक्तेः विभावाः- भक्तौ आलम्बनोद्दीपनयोः कृते अवकाशो वर्तते। देवानामवताराश्च अत्र आलम्बनविभावाः भवन्तीति हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ प्रतिपादितं वर्तते। तद् यथा - देवानामवताराश्चात्र आलम्बनविभावाः[24]

एवमेव देवानामाभूषणानि, तेषां चामत्कारिकी शक्तिः तथा तेषां भक्तसाहचर्यं च अत्र उद्दीपनविभावाः भवन्ति। भक्ताः तथा वेणुनादश्चाप्यत्र विभावत्वं भजन्ति इति हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ उक्तमस्ति। तद् यथा - भक्ताः वेणुनादश्चात्र विभावः[25] ।

भक्तेः व्यभिचारीभावाः (सञ्चारीभावाः वा) - अनेन रसेन संयुक्ताः व्यभिचारीभावाः (सञ्चारीभावा वा) अधोलिखिताः भवन्ति - निर्वेदः, विषादः, दीनता, ग्लानिः , श्रमः, मदः, गर्वः, शङ्का, त्रासः, आवेगः, उन्मादः, अपस्मृतिः, व्याधिः, मोहः, मृतिः, आलस्यम्, जाड्यम्, व्रीडा, अवहित्था, स्मृतिः,

वितर्क:, चिन्ता, मति:, धृति:, हर्ष:, औत्सुक्यम्, औग्र्यम्, अमर्ष:, असूया, चापल्यम्, निद्रा, सुप्ति: (स्वप्न:) तथा बोधश्च। किन्तु एतेषु प्राय: हर्ष-निर्वेद-मति-उत्सुकतादय: प्राचुर्येणोपलभ्यन्ते[26] ।

भक्ते: अनुभाव: - भक्तिरसेन सम्बद्ध: अनुभाव: द्विविध: - शीतम् (शैत्यम् अर्थात् शारीरिक-व्यापाराभाव:), क्षेपणञ्च (शारीरिक-व्यापाराणामाहरणम्)।

शीतम् - शीताख्ये अनुभावे एते भावा: अन्तर्भवन्ति - गानं, जृम्भणम्, दीर्घश्वास:, अपरेषामवमाननं, नेत्रविस्तार:, शुभसन्देशश्रवणम् तथा हासश्चेति।

क्षेपणम् - क्षेपणाख्ये अनुभावे पुन: एते शारीरिक-व्यापारा: अन्तर्भवन्ति - नृत्यम्, भूमौ शयनं, चीत्कार:, शरीरप्रथनम्, उच्चौ: हसनम्, रोमाञ्च:, हिक्कितम्, सहनम्, समयस्य अनपव्यय:, भोगाद्विमुक्ति:, भगवत्कृपाया दृढविश्वास: , भगवत्सङ्गतिकामना, भगवन्नामकीर्तनम्, भगवल्लोके निवासासक्तिमश्चेति[27]।

भक्ते: सात्त्विकभावा: - तत्र च भक्तौ त्रिप्रकारका: सात्त्विकभावा: सन्ति इति हरिभक्तिरसामृत-सिन्धौ प्रमाणमुपलभ्यते - स्निग्ध: (रतेरुद्भूत: स्नेह:), दिग्ध: (अन्याभ्य: भावनाभ्य: उद्भूत:) तथा रुक्ष: (रत्यभावादुद्भूत:) च[28] ।

भगवद्भक्तिरसायने श्री मधुसूदनसरस्वती ब्रूते - परिपूर्णरसा भगवद्रति: भक्ति:शृङ्गाराद्यपेक्षया तथैव बलवती यथा खद्योतेभ्य: सूर्य:-

कान्तादिविषया वा रत्यास्तत्र नेदृशम।

रसत्वं पुष्यते पूर्णसुखात्स्पर्शित्वकारणात्।।

परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्य: भगवद्रति:।

खद्योतेभ्य: इवादित्य: प्रभेव बलवत्तरा।।[29]

वस्तुत: भक्तिरसे अन्यरसानां स्थिति: सञ्चारीभाव-समाना वर्तते। एतदाधारेण आचार्य: श्रीरूपगोस्वामी अन्तत: शृङ्गारं शृङ्गार-भक्तिरसत्वेन, हास्यं च हास्य-भक्तिरसत्वेन अभिदधाति। तद् यथा तेनोक्तम्-हासादीनां व्यभिचारिषु पर्यवसानात्[30]। किन्तु परवर्तिनि काले मम्मट-विश्वनाथाभ्यां भक्ति: देवविषयकरतिरूपेण स्वीकृता। ताभ्यां तस्य रसत्वं न अङ्गीकृतं किन्तु भावत्वमेव अङ्गीकृतम्। तद् यथा रतिर्देवादिविषया.... भाव: प्रोक्त:[31] । पण्डितराज-जगन्नाथेनापि रसगङ्गाधरे भक्ति: रते: अङ्गत्वेन स्वीकृता। तेनोक्तम्-स्नेहभक्ति-वात्सल्यमिति रतेरेव विशेषा:[32] ।

भक्तिरस-भेदा: - श्रीरूपगोस्वामिना भक्तिरसो स्थूलरूपेण द्विधा विभक्त: - मुख्य-भक्तिरस: गौण- भक्तिरसश्चेति।

मुख्य-भक्तिरस: - मुख्य-भक्तिरसस्य पुन: पञ्च भेदा: स्वीकृता:। ते च यथा -

मुख्य-भक्तिरस-भेदाः	तत्स्थायीभावाश्च
शान्तभक्तिरसः	शान्तिः
प्रीतभक्तिरसः	प्रीतिः
प्रेयोभक्तिरसः	सख्यम्
वत्सलभक्तिरसः	वात्सल्यम्
मधुरभक्तिरसः	मधुरा रतिः

एतेषां रसानां प्रामुख्यमेषां क्रमानुसारेण निर्धारितमस्ति। तद् यथा शान्तभक्तिरसः सर्वोत्तमः तथा मधुरभक्तिरसश्च उत्कृष्टता-दृष्टया सर्वान्तिमः।[33]

शान्तभक्तिरसः:- शान्तभक्तिरसस्य स्थायीभावः शान्तिः। यदा शान्तरतिः नैरन्तर्येण स्थिरभावनायां तिष्ठति यदा च भक्तः औदासीन्येन भवति तदा शान्तभक्तिरसः कथ्यते। भगवतः ज्ञानानन्दयोः शाश्वतं रूपं (परब्रह्म, परमात्मा) शान्तभक्तिरसस्यालम्बनम् यद् विश्वादपि वृहत्तरम्[34] । शान्तभक्ताश्च द्विविधा - एके चात्मारामाः ये देवकृपाकारणाद् देवरतिं धारयन्ति। अन्ये च तपस्विनः ये भक्तिमार्गे दृढं विश्वसन्ति[35] । ये प्रमुखाः उपनिषदः शृण्वन्ति, एकान्ते निवसन्ति, सत्ये सन्तोषं धारयन्ति, विश्वरूपं द्रष्टुमर्हन्ति, ज्ञानमिश्रभक्तैः सङ्गताः भवन्ति यैश्च उपनिषच्चर्चा कुर्वन्ति तेऽत्र उद्दीपनभूताः। तत्र अनुभावाश्च नासाग्रावलोकनम्, ज्ञानमुद्राप्रदर्शनम्, अङ्गुलीनामङ्गुष्ठानाञ्च संयोजनम्, शत्रूणां कृतेऽपि घृणाया अभावः, भगवद्भक्तानां कृते अत्यन्तासक्तेरभावः, सूक्ष्मस्थूलशरीरयोः प्रभावं विना च जीवनम्, औदासीन्यम्, अपरिग्रहभावः, मिथ्याभिमानाभावः तथा मौनञ्चेति[36]। सात्त्विकभावाश्च स्वेदन-कम्पन-रोमाञ्च मूर्छनादयश्चेति[37]। निर्वेद-धृति-हर्ष-मति-स्मृति-औत्सुक्य-आवेग-वितर्कादयश्च सञ्चारीभावाः[38] । शान्तरतिश्च स्थायीभावः, यथा शमः सान्द्रश्च[39] शान्तभक्तिरसश्च द्विविधः- पारोक्ष्यः, साक्षात्कारश्चेति[40]। अस्मिन् रसे न सुखं, न दुःखं, न घृणा, न वा ईर्ष्या भवति। अत्र सर्वेषु प्राणिषु समानभावो जायते। धर्म-दान-करुणादिषु रक्ताः तपस्वि-व्यतिरिक्ताः भक्ताः यदा स्वकर्तृत्वं त्यजन्ति तदा ते शान्तभक्तिरसे प्रवेष्टुं शक्नुवन्ति।

प्रीतभक्तिरसः:- यस्य स्थायीभावः प्रीतिः सः प्रीतभक्तिरसः कथ्यते। यदा च दयायाः पात्राणि दासत्वमभिनयन्ति तदा सम्भ्रमप्रीतिः कथ्यते, यदा च ते वात्सल्यविषयीभूताः तदा च गौरवप्रीतिः भवति[41]। सम्भ्रमप्रीतिरसे देवाश्च आलम्बनरूपाः विषयाः तथा भक्ताश्च आश्रयभूताः[42]। अन्यत्र निवसतां भक्तानां कृते देवाः आलम्बनभूताः सन्ति[43] । दासाश्चतुर्विधाः सन्ति - अधिकृताः, आश्रिताः, पारिषदाः तथा अनुगाश्च[44]। आश्रिताश्च त्रिविधाः - शारण्याः, ज्ञानिचराः सेवानिष्ठाश्चेति[45] शक्त्यनुसारं सेवायां पूर्णोऽभिनिवेशः, भगवद्दासेषु ईर्ष्यारहिता मित्रता, प्रेम्णि च दृढता दासस्य विशेषानुभवाः सन्ति[46]।

प्रीति-प्रेय-मधुर-रसेषु स्तम्भादयः सर्वे सात्त्विकभावाः भवन्ति। निर्वेद-दीनता-ग्लानि- आवेग-उन्माद-व्याधि-मोह-मृति-जाडय-व्रीडा-अवहित्थ-स्मृति-वितर्क-चिन्ता-मति-धृति-हर्ष-औत्सुक्य-अमर्ष-चापल्य-सुप्ति-बोधादयश्चतुर्विंशतिः व्यभिचारीभावाः प्रीतिभक्तिरसे सम्भवन्ति। अन्ये च मद-श्रम-त्रास-अपस्मार-आलस्य-उग्रता-क्रोध-असूया-निद्रादयः व्यभिचारीभावाः प्रीतिभक्तिरसे न पोषकाः। देवसाक्षात्कारे सति हर्ष-गर्व-धृतयः आविर्भवन्ति। एवमेव देववियोगे च ग्लानि-व्याधि-मृतयश्च प्रकटीवन्ति। भक्तानुसारमवशिष्टाः अष्टादश व्यभिचारीभावाः देवसाक्षात्कारे देववियोगे च अभिव्यज्यन्ते[47]। अत्र उत्साहसमर्थितः सम्भ्रमः स्थायिभावो भवितुमर्हति। सम्भ्रमेण संयुक्ता प्रीतिः सम्भ्रम-प्रीतिः कथ्यते। एवं सम्भ्रम-प्रीतिः प्रीतिभक्तिरसस्य स्थायिभावोऽस्ति[48] । यदा सम्भ्रम-प्रीतिः दृढा भवति तदा प्रेमत्वमाप्नोति। भगवति पूर्णासक्तिः अनुभावोऽस्ति। प्रीतिभक्तिरसः द्विविधः - अयोगः योगश्चेति[49]। भगवद्दर्शनेच्छा च उत्कण्ठितमिति कथ्यते[50]।

वस्तुतः प्रीतिभक्तिरसे सर्वे व्यभिचारीभावाः न सम्भवन्ति। उत्कण्ठित-औत्सुक्य-दैन्य-निर्वेद-चिन्ता-जाडय-चापल्य-उन्माद-मोहादयः तत्र सामान्यतया दृश्यन्ते[51]। भगवद्दर्शन-सङ्गत्याद्यनन्तरं पुनः तद्वियोगः वियोगः इति कथ्यते। वियोगे सम्भ्रमप्रीतेः दश दशाः भवन्ति। ते च यथा जडता, व्याधिः, उन्मादः मृतिश्चेत्यादयः[52]। देवसाक्षात्कारश्च योग इति कथ्यते। तत्र च योगस्त्रिविधः - सिद्धिः, तुष्टिः स्थितिश्चेति[53]। उत्कट-इच्छानन्तरं प्रथमवारं भगवद्दर्शनं भगवत्प्राप्तिर्वा सिद्धिरिति कथ्यते[54]। भगवद्वियोगानन्तरं पुनः प्राप्तिश्च तुष्टिरिति कथ्यते। भगवतः चिरकालिकी प्राप्तिः स्थितिरिति कथ्यते। देवाश्च अस्य आलम्बनत्वेन विषयीभूताः। भगवतोऽधस्तादुपवेशनम्, भगवतोऽनुसरणम्, स्वेच्छात्यागः तथा भगवतः आदेशानुसरणञ्चात्रानुभावाः।

प्रेयोभक्तिरसः- प्रेयोभक्तिरसस्य स्थायीभावः सख्यमस्ति। सख्यरत्याख्यः स्थायीभावः विभावादिभिः परिपुष्टो भवति तदा प्रेयोभक्तिरसो जायते। प्रेयोभक्तिरसो सख्य-भक्तिरसः इत्यपि कथ्यते[55]। भगवान् तस्य सखायश्च अत्र आलम्बनभूताः[56]। प्रीतिभक्तिरसस्यालम्बनानि प्रेयोभक्तिरसस्याप्यालम्बनानि भवन्ति[57]। आकर्षकवेषभूषा-उत्तमगुणसम्पन्नता-शूरता-वीरता-बहुभाषाभिज्ञता- बहुभाषिता-साहसिकता-कलानिपुणता-विज्ञता-हास्यरसप्रियता-समृद्ध्यादयश्च देवस्य भगवतो वा गुणाः भवन्ति। भगवतः आश्रयभूताः न च दासभूताः तत्सखायः तत्समवेषभूषाधारिणः अत्यन्तं विश्वसनीयाः तद्विश्रम्भार्हाः वयस्याः भवन्ति। प्रेयोभक्तिरसस्य उद्दीपनेषु तत्स्वरूपं, तदायुधाः, तत्परमभक्ताः, तत्परिहासप्रियता, तद्वीरता, देवताराजादीनामुत्तमकार्यकलापादीनि चान्तर्भवन्ति। प्रेयोभक्तिरसे औग्र्य-त्रास-आलस्यादयः समे व्यभिचारीभावाः भवन्त्येव। किन्तु तत्र वियोगे संयोगे च मद-हर्ष-गर्व-निद्रा-धृति-मृति-ग्लानि-व्याधि-अपस्मृति-दीनतादयः न सम्भवन्ति।

वत्सलभक्तिरसः- वत्सलभक्तिरसस्य स्थायीभावः वात्सल्यरतिः भवति। वात्सल्यरतिश्च यदा विभावादिभिः परिपुष्टा भवति तदा वत्सलभक्तिरसो जायते[58]। देवाः ज्येष्ठभक्ताश्चात्र आलम्बनभूताः[59]। सर्वैश्चमत्कारगुणैः युक्तः आकर्षकः, कृष्णवर्णः, मृदुभाषी, प्रियभाषी सम्माननीयः उदारश्च भगवान् एव अत्र विभावः[60] । ज्येष्ठभक्ताश्चात्र विभावाः ये आत्मानं भगवतः श्रेष्ठतरं मत्वा तद्रक्षणे तत्शिक्षणे च संलग्नाः भवन्ति[61]। कौमारभाव आरम्भ-मध्यम-अन्तिमासु तिसृष्ववस्थासु विभक्तः[62] चपलतादिभावपूर्णः कौमारभाव एवात्र उद्दीपनभावः[63]। कौमारभावस्य आद्यवस्थायां भगवतः हस्तपाद-जङ्घादयः तदवयवाः लघवः कोमलाश्च भवन्ति[64]। कौमारभावस्य मध्यावस्थायां भगवतः आनेत्रं केशराशिः, तदधोवस्त्रं, कर्णच्छेदः, मधुरमस्पष्टं वचनं तथा जानुभ्यां गमनं च चित्तं हरति[65] । कौमारभावस्य अन्तिमावस्थायां च भगवतः कटिः ईषत् क्षीणा भवति, वक्षश्च प्रशस्तं भवति, पृष्ठभागे च त्रिधा विभक्ता वेणी राजते[66]। वत्सलभक्तिरसस्य सात्त्विकभावास्तु स्तम्भादयो भवन्ति। एवमेव महिलाभक्तानां स्तन्यप्रस्रवणमप्यत्र सात्त्विकभावो भवितुमर्हति[67]। प्रीतिभक्तिरसे ये व्यभिचारीभावाः भवन्ति तेऽपि वतस्लभक्तिरसे भवन्ति, किन्तु तत्र अपस्माराख्यः अतिरिक्तो व्यभिचारीभावो भवितुमर्हति। वतस्लरतिश्च वतस्लभक्तिरसस्य स्थायिभावः[68]। यद्यपि बहवः व्यभिचारीभावाः सम्भवन्ति तथापि वियोगे केवलं चिन्ता-विषाद-निर्वेद-जाड्य-दैन्य-चापल्य-उन्माद-मोहादयः प्रमुखा एव भवन्ति[69]।

मधुरभक्तिरसः- मधुरभक्तिरसस्य स्थायीभावो मधुरा रतिरस्ति। यदा च मधुरा रतिः समुचितविभावादिभिः परिपुष्टा भवति तदा मधुरभक्तिरसः कथ्यते[70] । मधुररसास्वादने अरुचिशीलानां कृते मधुरभक्तिरसः न युज्यते[71]। भगवान्, तस्य प्रियाः सुन्दर्यः रमण्यश्च अस्य रसस्य आलम्बनभूताः सन्ति[72] । वंशीस्वनादयः मधुरभक्तिरसे उद्दीपनानि भवन्ति[73]। हास-कटाक्षादयश्चात्र अनुभावाः सन्ति[74]। आलस्यम् औग्र्यं च विहाय अन्ये समे व्यभिचारीभावाः अत्र सम्भवन्ति[75] । मधुरा रतिश्चात्र स्थायीभावः इति पूर्वमेवोक्तम्[76]। शृङ्गारवत् मधुरभक्तिरसोऽपि द्विविधः - विप्रलम्भः सम्भोगश्चेति[77] । पूर्वराग-मान-प्रवासादयः प्रकाराः विप्रलम्भे भवन्ति[78]। मिलनात् पूर्व वियोगावस्थायां प्रेमिणोः प्रीतिः पूर्वरागः[79] कथ्यते। मेलनानन्तरं वियोगश्च प्रवासः[80]। मेलनसमये प्रेमिणोः उपभोगश्च सम्भोगः इति कथ्यते[81] ।

गौण-भक्तिरसः - एवमेव गौण-भक्तिरसश्च हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ[82] सप्तधा विभक्तः। तद्भेदाश्च यथा -

गौण-भक्तिरस-भेदाः	**तत्स्थायीभावाश्च**
हास्य-भक्तिरसः	हासरतिः
अद्भुत-भक्तिरसः	विस्मयरतिः
वीर-भक्तिरसः	उत्साह-रतिः
करुण-भक्तिरसः	शोक-रतिः

रौद्र-भक्तिरसः	क्रोध-रतिः
भयानक-भक्तिरसः	भय-रतिः
विभत्स-भक्तिरसः	जुगुप्सा-रतिः

इदानीमुपर्युक्तानां तेषाञ्च गौणभक्तिरसभेदानां स्वरूपमत्र संक्षेपेण विव्रीयते-

हास्य-भक्तिरसः- यदा हासरतिः विभावादिभिरन्यैः रसतत्त्वैः परिपोषितो भवति तदा हास्य-भक्तिरसः कथ्यते।[83] देवस्य परिहासपूर्ण-वचन-वेष-व्यवहारादयोऽत्र उद्दीपनविभावाः। हर्ष-आलस्य-अवहित्थादयः व्यभिचारभावाः, हास्यरतिश्च स्थायिभावः[84]। स्मित-हसित-विहास-अवहसित- अपहसित- अतिहसितादयः षड्विधाः हास्यरतयो भवन्ति।

अद्भूत-भक्तिरसः - यदा विस्मयरतिः भगवतः अलौकिकशक्तिवशाद् विभावादिभिरन्यैः रसतत्त्वैः भक्तस्य हृदये आनन्ददा भवति तदा अद्भूत-भक्तिरसः कथ्यते[85]। सर्वविधाः भक्ताः विस्मयरतेश्च आलम्बनभूताः सन्ति। अलौकिकशक्तिसम्पन्नः ईश्वर एव तत्र विषयः[86]। देवस्य विशेषकार्यकलापोऽत्र उद्दीपनविभावः। विस्फारितनेत्रे च अनुभावः। पक्षाघात-अश्रु-रोमाञ्चादयश्चात्र सात्त्विकभावाः[87]। आवेग-हर्ष-जाडयादयश्चात्र व्यभिचारभावाः सन्ति।

वीर-भक्तिरसः - यदा उत्साह-रतिः समुचित-विभावादिभिः पोषिता भवति तदा वीर-भक्तिरसः कथ्यते[88] । चत्वारो वीराः भवन्ति - युद्धवीर-दानवीर-दयावीर-धर्मवीराश्च। भक्ताश्च वीर-भक्तिरसस्य आलम्बनभूताः[89]। वस्तुतः उत्साह-रतिश्च सर्वविधभक्तेषु सम्भवति[90] ।

करुण-भक्तिरसः - यदा शोक-रतिः विभावादिभिः पोषिता भवति तदा करुण-भक्तिरसः कथ्यते[91]। देवतानां करुणविषयत्वं न युज्यते। अतः भक्ताः एव करुणरसस्य विषयीभूताः सन्ति[92]। कदाचिद् भक्तानां सम्बन्धिनः अपि करुणरसस्य विषयीभूताः सन्ति। एवं करुणरसस्य त्रयो विषयाः सम्भवन्ति[93]। मुखशुष्कता, शरीरशैथिल्यं, दीर्घश्वासः, चीत्कारः, भूमौ शयनम्, वक्षस्ताडनञ्चेत्यादयो अनुभावाः[94]। एवमेव अष्टौ सात्त्विकभावाः तथा जाडय-निर्वेद-ग्लानि-दैन्य-चिन्ता-विषाद-औत्सुक्य- चपलता-उन्माद-मृति-आलस्य-अपस्मृति-व्याधि-मोहाश्च व्यभिचारीभावाः भवन्ति[95]।

रौद्र-भक्तिरसः - यदा क्रोध-रतिः विभावादिभिः पोषिता भवति तदा रौद्र -भक्तिरसः कथ्यते[96]। क्रोध-रतेः त्रयो विषया भवन्ति। देवता, मित्राणि, अमित्राणि च। एतेषां विषयाणामाश्रयभूताः भक्ता एव सन्ति[97] । दन्तघर्षणम्, रक्तनेत्रे, अधरोष्ठदशनम्, वाहुस्फोटनम्, अन्येषां ताडनम्, दीर्घनिःश्वासश्चेत्यादयः अनुभावाः, आवेग-जडता-गर्व-निर्वेद-मोह-चापल्य-असूया-औग्र्य-अमर्ष-श्रमश्चेत्यादयश्चात्र व्यभिचारीभावाः सन्ति[98]।

भयानक-भक्तिरसः- यदा भय-रतिः समुचित-विभावादिभिः पोषिता भवति तदा भयानक-भक्तिरसः कथ्यते[99]। अत्र च देवताभिशापो विषयः। यदा चाश्रयभूतो भक्तः देवे अपराधमाचरति तदा सः देवताभिशापस्य विषयो भवति। भयविषयीभूते आश्रये भयप्रदर्शनम् उद्दीपनम्। मुखशुष्कता, दीर्घश्वासः, पश्चादवलोकनम्, आत्मगोपनम्, अस्थिरता, चीत्कारः, आश्रयान्वेषणञ्चेत्यादयो अनुभावाः । एवमेव अश्रूणि विहाय अन्ये सात्त्विकभावाः अत्र भवन्ति[100]। त्रास-मृति-चपलता-आवेग- दैन्य-विषाद-मोहापस्मार-शङ्कादयश्च व्यभिचारीभावाः अप्यत्र भवन्ति[101]। भयरतिश्च स्थायिभावः यः अपमान-भयङ्कर-व्यक्तिभ्यः आयान्ति। भयरतिश्च भक्तेष्वेव भवन्ति नान्यत्र।

विभत्स-भक्तिरसः- यदा जुगुप्सा-रतिः विभावादिभिः पोषिता भवति तदा विभत्स-भक्तिरसः कथ्यते[102]। आश्रिताः शान्तभक्ताः तथा अन्ये ये देवस्य अन्तरङ्गाः न भवन्ति ते अत्र आलम्बनभूताः भवन्ति[103] । ष्ठीवन-नासिकावरण-शरीरकम्पन-रोमाञ्च-स्वेदनादयः अनुभावाः सन्ति[104]। ग्लानि-श्रम -उन्माद-मोह-निर्वेद-दैन्य-विषाद-जाडय-चपलतादयश्च व्यभिचारीभावाः भवन्ति[105]। जुगुप्सा-रतिश्च स्थायिभावः। स च द्विविधः - विवेकजः, प्रायिकश्चेति[106]।

भक्तेः अवान्तर-भेदाः - हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ भक्तेः अवान्तर-भेदाः अपि द्रष्टुं शक्यन्ते। भक्तिस्तावद् द्विविधा साधनरूपा साध्यरूपा च। साध्यरूपा तु हार्दरूपा। साऽपि भक्ति-शब्देनोच्यते। यथा- **भक्तिसञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुमिति।**

अस्याश्च भाव-प्रेम-प्रणय-स्नेहरागाख्याः पञ्चभेदाः॥[107]

सा च भक्तिः अन्यथाऽपि त्रिधा विभक्ता दृश्यते-

सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।[108]

साधनभेदौ - तासु साधनाभिधा भक्तिः पुनः द्विधा विभक्ता - वैधी रागानुगा चेति।

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा।[109]

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।

शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते॥[110]

भक्तभेदाः- यथा भक्तेः भेदाः भवन्ति तथैव भक्तानामपि त्रिधा भेदः प्रसिद्धः- उत्तमः, मध्यमः कनिष्ठश्चेति -

उत्तमो मध्यमश्च स्यात् कनिष्ठश्चेति स त्रिधा।[111]

शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़निश्चयः।

प्रौढश्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥

यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान् स तु मध्यमः।

यो भवेत् कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते॥

उपसंहारः:- संक्षिप्य वदामश्चेद् भक्तेः रसत्वपरिप्रेक्ष्ये प्रमुखतया मान्यतात्रयं प्रसिद्ध्यति -

i भक्तिः स्वतन्त्रो रसो नास्ति।

ii भक्तेः रसत्वमान्यता भक्तकविभिरेवाङ्गीकृता नान्यैः।

iii भक्तेः रसत्वमान्यता कैश्चन काव्यशास्त्रिभिः बलादङ्गीकृता। परमासु मान्यतासु केचन आक्षेपाः अपि भवन्ति।

ते च अधोलिखिताः सन्ति -

- भक्तेः रसत्वस्वीकारे परम्पराया विरोधो भवति, यतोहि भरतादिभिः भक्तेः रसत्वं नाङ्गीकृतम्।
- भक्तेः अन्तर्भावः अन्यरसेषु भवितुमर्हति। अतः तस्या नवीनरसत्वेन स्वीकरणं निरर्थकम्।
- भक्तेः भावरूपेण स्वीकृतिरेव वरम्।
- भक्तौ निर्जीवमूर्तौः प्रति आग्रहो भवति। अतस्तत्र आवश्यकी तीव्रता वेगो वा न भवति।
- भक्तिः कश्चन मूलभावो नास्ति न वा अस्या भावना व्यापिकाऽस्ति।

एवमेव यद्यपि केचन अन्येऽपि आक्षेपाः भवन्ति किन्तु उपर्युक्ताः प्रमुखा एव। एवमेवैतेषामाक्षेपानां योग्यं समाधानमपि विद्वद्भिः प्रदत्तम्। तद् यथा -

- परम्परा-विरोधभयेन नवीनमते अरुचिप्रदर्शनं बुद्धिमत्तायाः परिचायकं नास्ति। वस्तुतः अयं संसारः परिवर्तनशीलः। मान्यताः अपि समये समये परिवर्तन्ते। तासां नवीन-मान्यतानां स्वीकरणमावश्यकम्। महाकविः कालिदासोऽपि नवीनतायाः समर्थकः। महता कण्ठेन तेनोक्तम् - पुराणमित्येव न साधु सर्वम् इति।
- वस्तुतः भक्तेः अन्यरसेषु अन्तर्भावः बलादेव क्रियते। यतो हि तस्याः रसयोग्यता पूर्णरूपेण वर्तते।

- निर्जीवमूर्ति प्रति आग्रहे सति तीव्रताया अभाव इति यदुच्यते तत् तथ्यमपि असङ्गतं भवति यतो हि भक्तिभावना नाम किञ्चिद् हृदयगतं वस्तु भवति न तु केवलं मूर्तिगतं वाह्य-वस्तु। एवमन्येषां रसानामिव भक्तिरपि हृदयगता एव वर्तते।
- एवमेव न कस्या अपि भावनाया व्यापकतायां पुष्टाधारो भवति। यतो हि भिन्नरुचिर्हि लोक:। भक्त्यतिरिक्ता अन्ये सर्वे रसा सर्वेषां प्रियभूता: न सन्ति। अत एव रसानां संख्याविषयऽपि मतानैक्यं दृश्यते। अत: सत्यां योग्यतायां भक्ते: रसत्वमङ्गीकर्तव्यम्।

वस्तुत: भक्तिरसविषये महान्त: विचारा: भवितुमर्हन्ति। एतद्विषये अग्रेऽपि शोधस्य सम्भावना वर्तते। विस्तारभयान्मयाऽत्र दिङ्मात्रमुपस्थापितमिति शम्।

सन्दर्भा:-

1. काव्यप्रकाशे 4.35
2. भक्तिरसायने 2.73-74
3. साहित्यदर्पणे 3.260-261
4. अमरकोषे 1.10, पृ. 39, पङ्क्ति: 404
5. अभिनवभारती - 6.6
6. साहित्यदर्पण: 1. 3
7. पा. 3.3.118
8. गर्भोपनिषदि -2
9. कामसूत्रे 2.1.3.2
10. तैत्तिरीयोपनिषदि 7.617
11. नाट्यशास्त्रे 7.1-3
12. साहित्यदर्पणे 3.2-3
13. नाटयशास्त्रे 6.15
14. काव्यालङ्कारे 14.3
15. ध्वन्यालोक: -2.7
16. शृङ्गारप्रकाशे -1.6
17. साहित्यदर्पणे 3.255-56
18. काव्यप्रकाशे 4.35
19. श्रीमद्भागवते 1.1.3
20. नारदभक्तिसूत्रे 4-5
21. दशरूपके 4.83
22. हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ 2.1.5
23. तत्रैव 2.5.2
24. तत्रैव 3.5.3
25. तत्रैव 2.1.13
26. तत्रैव 2.4.6
27. तत्रैव 2.2.3
28. तत्रैव 2.3.2
29. भगवद्भक्तिरसायने पृ. 278
30. भक्तिरसामृतसिन्धु:, पृ. 74
31. काव्यप्रकाशे- 4.35, साहित्यदर्पणे 3. 26
32. रसगङ्गाधरे पृ. 176
33. हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ- 2.5.115
34. तत्रैव - 3.1.10
35. तत्रैव - 3.1.11
36. तत्रैव - 3.1.26
37. तत्रैव 3.1.30

38. तत्रैव 3.1.33
39. तत्रैव 3.1.35
40. तत्रैव 3.1.38
41. तत्रैव 3.2.4
42. तत्रैव 3.2.6
43. तत्रैव 3.2.7
44. तत्रैव 3.2.18
45. तत्रैव 3.2.21
46. हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ- 3.2.61
47. तत्रैव 3.2.71
48. तत्रैव 3.2.76
49. तत्रैव 3.2.95
50. तत्रैव 3.2.96
51. तत्रैव 3.2.99
52. तत्रैव 3.2.116
53. तत्रैव 3.2.129
54. तत्रैव 3.2.130
55. तत्रैव 3.3.1
56. तत्रैव 3.3.2
57. तत्रैव- 3.3.3
58. तत्रैव 3.4.1
59. तत्रैव 3.4.2
60. तत्रैव 3.4.4
61. तत्रैव 3.4.8
62. तत्रैव 3.4.17
63. तत्रैव 3.4.18
64. तत्रैव 3.4.19
65. तत्रैव 3.4.25
66. तत्रैव 3.4.29
67. तत्रैव 3.4.45
68. तत्रैव 3.4.52
69. तत्रैव 3.4.64
70. तत्रैव 3.5.1
71. तत्रैव 3.5.2
72. तत्रैव 3.5.3
73. तत्रैव 3.5.11
74. तत्रैव 3.5.13
75. हरिभक्तिरसामृतसिन्धौ- 3.5.16
76. तत्रैव 3.5.19
77. तत्रैव 3.5.24
78. तत्रैव 3.5.25
79. तत्रैव 3.5.26
80. तत्रैव 3.5.31
81. तत्रैव 3.5.34
82. तत्रैव 2.5.116
83. तत्रैव 4.1.6
84. तत्रैव 4.1.13
85. तत्रैव 4.2.1
86. तत्रैव 4.2.2
87. तत्रैव 4.2.3
88. तत्रैव 4.3.1
89. तत्रैव 4.3.2
90. तत्रैव 4.3.3
91. तत्रैव 4.4.1
92. तत्रैव 4.4.2
93. तत्रैव 4.4.3
94. तत्रैव 4.4.5
95. तत्रैव 4.4.6
96. तत्रैव 4.5.1

97. तत्रैव 4.5.2

98. तत्रैव 4.5.24

99. तत्रैव 4.6.1

100. तत्रैव 4.6.9, 4.6.10

101. तत्रैव 4.6.11

102. तत्रैव 4.7.1

103. तत्रैव 4.7.2

104. तत्रैव 4.7.4

105. तत्रैव 4.7.5

106. तत्रैव 4.7.6

107. भागवते एकादशे स्कन्ध

108. तत्रैव - 2.1

109. हरिभक्तिरसामृतसिन्धौः - 2.3

110. तत्रैव - 2.3-4

111. तत्रैव - 2-6

सन्दर्भग्रन्थसूची -

1. अभिनवभारती. अभिनवगुप्त, हिन्दीव्याख्या - विश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिः, दिल्ली, 1968
2. अभिनवभारती. अभिनवगुप्त, पुणे, गायकवाड ओरियंटल सीरिज, 1960
3. नाटयशास्त्र - भरत, सम्पादकः - आर. एस. नागरः, परिमलप्रकाशनम्, दिल्ली, 1984
4. नाट्यशास्त्र, एम. घोष, दि रॉयल एसियाटिक सोसाइटी आफ बेंगल, 1950
5. ध्वन्यालोकः, आनन्दवर्धनः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1937
6. वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तकः, कर्णाटक यूनिवर्सिटी, धारवाड, 1977
7. औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्रः, काव्यमाला, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
8. काव्यादर्शः, दण्डी, भण्डारकर ओरियंटाल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पुणे 1970
9. काव्यप्रकाशः. मम्मटः, सम्पा. रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, 1983
10. साहित्यदर्पणः, विश्वनाथः, सम्पा. परिदास शर्मा, कोलकाता
11. अमरकोषः, अमरसिंहः, सम्पा. नारायण आचार्य, चौखम्भा संस्कृत भवन-ग्रन्थमाला-46, चौखम्भा संस्कृत भवनम्, वाराणसी, वि.सं. 2060

साहित्यशास्त्रस्य अलङ्कारात्मवादे क्रान्तिपञ्चकम्

प्रो. सदाशिवकुमारो द्विवेदी
संस्कृतविभागः, कलासङ्कायः,
समन्वयकः, भारताध्ययनकेन्द्रं च,
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः,
वाराणसी 221005

आधुनिकस्य संस्कृतकाव्यशास्त्रस्य काव्यं नाट्यञ्चेति द्विवेधेऽपि क्षेत्रे विद्यतेतरां महत्त्वपूर्णमविस्मरणीययञ्चावदानम् आचार्याणां सनातनकवीनां **रेवाप्रसादद्विवेदिनाम्**। सनातनकविभिः **काव्यालङ्कारकारिका, नाट्यानुशासनम्, अलं ब्रह्म, सौन्दर्यपञ्चाशिका, क्रमपञ्चाशिका, साहित्यशारीरकम् साहित्यालङ्कार**[1] चेत्येतेषु ग्रन्थरत्नेषु साहित्यशास्त्रस्य अभिनवं प्रमेयमूलके काव्यशास्त्रस्येतिहासग्रन्थे च सम्पूर्णाया अलंभावात्मकियाः काव्यशास्त्रस्य परम्पराया अभिनवरूपेण समीक्षणमुपस्थाप्यते सोपपत्तिकम्। काव्यनाट्योभयशास्त्रस्य पूर्वाचार्यैः प्रतिपादितां महतीं परम्परां समनुवीक्ष्य मीमासशास्त्रं चाश्रित्य आचार्यवर्यैः संस्थापिताः सन्त्यनेके नवीनाः सिद्धान्ताः। सिद्धान्तग्रन्थानेतानधिकृत्य जायन्ते शोधकार्याणि अध्ययनमध्यापनञ्च विश्वविद्यालयेषु नैकैषु च अन्येषु शिक्षासंस्थानेषु सम्पूर्णेऽपि विश्वे। शोधपत्रेऽस्मिन् सद्य एव काश्याः कालिदाससंस्थानतः प्रकाशिते **साहित्यालङ्कार** इत्यस्मिन् साहित्यशास्त्रस्य अभिनवग्रन्थे सम्पूर्णामपि साहित्यशास्त्रस्य परम्परां सुसमीक्ष्य प्रतिपादिता अभिनवाः सिद्धान्ताः प्रस्तूयन्ते।

सद्य एव 2016 ख्रीष्टाब्दे प्रकाशिते **साहित्यालङ्कार** इत्यस्मिन् ग्रन्थे आचार्यरेवाप्रसादद्विवेदिनां सम्पूर्णस्य अभिनवसिद्धान्तप्रवर्तकस्य साहित्यशास्त्रोपज्ञस्य सारतत्त्वं सविस्तरं 639 कारिकासु उपस्थितमस्तीति महते प्रमोदाय साहित्यतत्त्वान्वेषणतत्पराणां सहृदयकवीनां समेषाम्। द्वाविंशतिकारिकात्मकेन **'आसनबन्धः'** इत्यनेन स्वोपज्ञेन संस्कृतभूमिकाभागेनोपनिबद्धेऽस्मिन् ग्रन्थरत्ने महर्षेः भरतमुनेः प्रारभ्य इदानीं यावत् प्रवर्तमाना साहित्यशास्त्रस्य **पञ्चक्रान्तयः** विस्तरेण निरूपिताः सन्ति। ग्रन्थस्यास्य सुविस्तृता भूमिका आंग्लभाषायाम् आचार्यैः राधावल्लभत्रिपाठिमहाभागैः विलिखिताऽस्ति यत्र सोपपत्तिकं ध्वनिसिद्धान्तस्य समीक्षणं विधाय बौद्धदर्शनानुप्राणितता चैतस्य प्रमाणीकृताऽस्ति आचार्यवर्यैः एतैः। बौद्धानां

क्षणभङ्गवादवदेवानुप्राणितोऽस्ति ज्ञानात्मके काव्ये अनिश्चयार्थप्रवर्तकः प्रधानभूतस्य चमत्कारैकमूलस्य व्यङ्ग्यार्थस्य काव्यात्मत्वेन प्रतिष्ठापकः ध्वनिसिद्धान्तः। अनेन सनातनकवीनां ध्वनिप्रत्याख्यानतर्कः समर्थनं लभते यत्र समुद्घोष्यते एभिर्यदेष ध्वनिसिद्धान्तः बौद्धानां शून्यवादेनानुप्राणितः। लौकिक-विषयान्वितायां सहृदयैकमूलायामानन्दैकरूपायाञ्च काव्यानुभूतौ शून्यत्वं नैवापलभ्यते किञ्चिदपि स्थानं बौद्धप्रवर्तितम्। सानातनकविभिः स्वीक्रियते यद् भामहाचार्योऽस्ति बौद्धः शब्दार्थौ काव्यमित्येतत् काव्यलक्षणत्वेन प्रतिपादने प्रणम्य सार्वं सर्वज्ञञ्चेति स्वालङ्कारग्रन्थस्य आदावेव मङ्गलपद्ये प्रतिपादनेन।

साहित्यलङ्कारस्य आदौ सनातनकविः **चत्वारि धामानि, पञ्च कल्पाः, साहित्यागम** इत्येतेषां विषयाणां समुल्लेखं विदधाति। आचार्योऽसौ सर्वप्रथमं भारतं वर्षं नमस्करोति। कथयति च आदावेव ग्रन्थस्य यदत्र भारते वर्षे चत्वारि धामानि यथा प्रतिष्ठितानि सन्ति तथा चैतानि प्रतिष्ठितानि साहित्यशास्त्रेऽपि **काञ्ची-शारदा-महाकाल-काशीरूपेणैवम्**-

वन्देऽहं भारतं वर्षं चतुर्धामप्रतिष्ठितम्।
वन्दे साहित्यशास्त्रं च चतुर्धामप्रतिष्ठितम् ॥1॥

प्रथमं धाम वर्तते काञ्चीधाम यत्र बभूवतुः नाट्यशास्त्रस्य प्रवर्तको भरतमुनिः काव्यलक्षणादर्शनाम्ना प्रसिद्धस्य ग्रन्थरत्नस्य रचयिता आचार्यो दण्डी च। आसीदसौ वैदिकः साहित्यागमस्य समर्थकः शब्दैककाव्यतावादी इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यमिति समुद्घोषयन्। तद्यथा-

धामसु प्रथमं काञ्ची यत्र दण्डी बभूव वै।
तत्रैव क्वचनासीद् वै भरतोऽपि महमुनिः॥2॥

द्वितीयं धाम वर्तते शारदाधाम कश्मीरेषु प्रतिष्ठितं यत्र अभवन् भामहोद्भटवामनरुद्रटादयो नैकाः काव्यशास्त्रिणः साहित्यागमस्य विरोधिनः शब्दार्थोभयकाव्यात्मवादिनः व्यञ्जकैकमूलस्य काव्यात्मभूतस्य ध्वनितत्त्वस्य प्रवर्तकाः व्यक्तिविवेकस्य प्रवर्तका महिमभट्टादयः प्रत्याख्यातारश्च भूयांसो विद्वांसः। तद्यथा-

द्वितीयं शारदाधाम कश्मीरेषु प्रतिष्ठितम्।
यत्र भामह इत्याद्या अभूवन् काव्यशास्त्रिणः॥3॥

तृतीयं धाम वर्तते **महाकालधाम** धारानगर्याम् अवन्तिक्षेत्रे प्रतिष्ठितं यत्र प्रमुख आलङ्कारिकाः सन्ति शृङ्गारप्रकाशस्य प्रवर्तकः भोजराजः, दशरूपकस्य रचयिता धानञ्जयः तस्य वृत्तिकारः धनिकश्च। त्रयोऽपि नानुमोदन्ते ध्वनिवादं, कव्यात्मवादत्वेनानुसरन्ति 'अहमागमम्'। तद्यथा-

तृतीयं तु महकालधाम धारापुरीस्थितम्।
यत्रासीद् धनिकः श्रीमानाचार्योऽत्र व्यराजत॥4॥

चतुर्थ धाम वर्तते **काशीधाम** विश्वेश्वरविहारभूमौ प्रतिष्ठितं यत्र बभूवतुः अर्थचित्रमीमांसा-कुवलयानन्दादीनां ग्रन्थरत्नानां प्रवर्तकः अप्पय्यदीक्षितः, श्रीभगवद्भक्तिरसायनस्य प्रवर्तकः मधुसूदनसरस्वती, भक्तिरसार्णवस्य प्रवर्तकः हरिहरानन्दसरस्वती करपात्रस्वामी इत्येते प्राचीनाः काव्यालङ्कारकारिकायाः प्रवर्तकः सनातनकविश्चेत्येते बहवाश्चाधुनिकाः काव्यशास्त्रिणः। तद्यथा-

चतुर्थ धाम काशी श्रीवश्वेश्वर-विहारभूः।
अप्पय्यदीक्षितः श्रीमानाचार्योऽत्र व्यराजत॥5॥

भारतवर्षस्य भौगोलिकं स्वरूपमवलम्ब्य प्रवर्तितानि सन्त्येतानि धामानि साहित्यशास्त्रे सनातनकविभिः अभिनवसिद्धान्तप्रवर्तकाणामाचार्याणाम्।

साहित्यालङ्कारे अतः परं सनातनकवयः प्रतिष्ठापयन्ति साहित्यागमस्य पञ्चकल्पात्मकतां प्रायेण समेषामेव काव्यत्मभूतानां तत्त्वानां समाहारं विधाय। एतेषां मते प्रायेण साहित्यागमस्य चत्वारः कल्पाः सन्ति-

1. **पूर्णताकल्पः दोषाभावात्मकः** प्रथमः, सर्वैरपि स्वीकृतत्वात्वान् मुख्यार्थहतिं निराकर्तुं सर्वप्रथमम् आलङ्कारिकैः पूर्ववर्तिभिः अविरोधेन।[3]
2. **गुणकल्पः वर्णधर्मात्कश्च** द्वितीयः, विंशतिकाव्यगुणात्मकत्वेन प्रवर्तमानः भरतादिभिः।
3. **लक्षणकल्पः अस्फुटालङ्कारात्मकः** तृतीयः षट्त्रिंशत् संख्याकात्मकः भरतमुनिना प्रवर्तितः।
4. चतुर्थश्च **स्फुटालङ्कारकल्पः** अलङ्कारात्मा अलङ्कारात्मवादस्य प्रवर्तकः अलंब्रह्मवादात्मकः ब्रह्मकल्पः।

तद्यथा-

साहित्यशास्त्रे पञ्चैव कल्पाश्च प्रभवन्तकि।
आद्यस्तु पूर्णताकल्पो दोषाभावत्मकस्तु सः॥6॥
द्वितीयो गुणकल्पस्तु वर्णधर्मात्मकः स्फुटम्।
कल्पेऽस्मिन् काव्यता सिद्धाऽलङ्क्रिया त्ववशिष्यते॥7॥
कल्पस्तृतीयः काव्यानामस्फुटालङ्क्रियात्मकः।
लक्षणेत्याख्यया मान्यः संख्यातीतो व्यवर्त्तत॥8॥
स्फुटालङ्कारकल्पस्तु चतुर्थः कल्प उच्यते।
ब्रह्मशब्देन, नो तस्मात् परं किञ्चिदपेक्ष्यते॥9॥

इदमत्रवधेयं यद् योऽयमग्रिमः कल्पस्तस्य पूर्वकल्पोऽपि समुल्लिख्यते। ततश्च योऽयं तुरीयः कल्पः स तृतीयः। तृतीयो द्वितीयेन, द्वितीयश्च प्रथमेन गर्भितः कदलीस्तम्भन्यायेन। ब्रह्मात्मलाभापरपर्यायः भूमभावरूपो रसोऽप्यत्र समायातः। वस्तुतो रसालङ्कारः तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्ववर्त्मा- **रस=ब्रह्म=अलम्** इत्यनेन क्रमात्। सेयमपूर्वा समीक्षादृष्टिः। अभिनवगुप्तपादानामेवायं मनोरथपूर्त्तिः अपूर्वेऽयमुद्गिरतः ध्वन्यालोकस्य मङ्गलपद्ये एवम्-

अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां
जगद् ग्रावप्रख्यं निजरसभरात् सारयति च ।
क्रमात् प्रख्योपाख्याप्रसरसुभगं भासयति तत्
सरस्वत्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते ॥1॥

अतः परम् अहमागमस्य निरूपणमुपलभ्यते साहित्यालङ्कारे। अहमागमस्य प्रवर्तकः अग्निपुराणे प्रतिपादितः एकादशाध्यायात्मकः साहित्यशास्त्रांशो वर्तते। अग्निपुराणस्य एकादशाध्यायेषु समुपलभ्यन्ते साहित्यशास्त्रस्य सर्वाण्यपि सूत्राणि, येषु अलङ्कारपदे अलमित्यस्य पदस्य ब्रह्मवाचकता समुपलभ्यते। सम्पूर्णायां साहित्यशास्त्रेतिहासस्य परम्परायामिदंप्रथमतया अत्रैवोपलभ्यते अग्निपुराणस्य 'साहित्यशास्त्रागम'-रूपेण प्रतिष्ठा। आचार्यरेवाप्रसादद्विवेदिनां साहित्यशास्त्रस्य आगममूलकता प्रमाणीकृता स्वकीये हिन्दीभाषायां विलिखिते साहित्यशास्त्रस्य इतिहासग्रन्थे।[4] साहित्यालङ्कारे आचार्याः कथयन्त्येवम्-

आगमोऽग्निपुराणेऽस्य कथितस्त्वहमागमः।
अकारादिर्हकारान्ता सृष्टिः शब्दार्थयोर्मता॥10॥
अहमेवास्त्यहङ्कारः कारस्य स्वार्थतासृतौ।
ब्रह्मैवाभिहितं नान्यदहालमिति संज्ञया॥11॥

अलङ्कारपदे अलमित्यस्ति वर्णसमाम्नायस्य पूर्णताया द्योतकमव्ययम्। अल् इत्यस्मिन् प्रत्याहारे सर्वेषामेव स्वरव्यञ्जनात्मकानां वर्णानां भवति परिगणनम्। अत्रैव सन्निहिताऽस्ति सम्पूर्णाऽपि शब्दार्थरूपिणी सृष्टिः वाङ्मयपदवाच्या। अन्यथा विचारणायाम् अलङ्कारपदे अलमस्ति अहंरूपात्मकमेव। अत्र पुनः स्वार्थकोऽस्ति कार इति प्रत्ययः। अलमित्येव अलङ्कार अलम्भावो ह्यलङ्कारो वा इत्यस्ति पदस्यास्य व्युत्पत्तिः। अहालयोर्ब्रह्मालीलाऽत्र प्रातिभासिकं विश्वं प्रकाशयति शाब्दार्थात्मकं आनन्दैकरूपञ्च तदनुभवाय प्रवर्तितात्मनां सहृदयचञ्चरीकाणां हृत्कमलेषु।

सनातनकविभिरत्र प्रवर्तितमस्ति अभिनवं काव्यलक्षणं- **'सुन्दरो विकल्पः काव्यम्'** इति। **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** इति यद् योगसूत्रं (1.9)[5] वर्तते महर्षिणा पतञ्जलिना प्रवर्तितं तदेवानुसृत्य प्रस्तूयते एतल्लक्षणं काव्यस्य। शब्देनोपस्थापितः शब्दस्य विकल्पः ज्ञानात्मकः काव्यात्मतां

भजते, न शब्द:। अर्थ: शरीरतां नैव स्पृशति काव्ये। भोजराजोऽपि श्रृङ्गारप्रकाशे प्रतिपादयति शब्दस्य विकल्पात्मकतामेवम्-

विकल्पयोनयः शब्दा विकल्पाश्शब्दयोनयः।
तयोरन्योन्यसम्बन्धो नार्थं शब्दाः स्पृशन्त्यपि ॥ (शृ.प्र. 6.91)[6]

तद्यथा

गुणानुरागमिश्रेण यशसा तव सर्पता।
दिग्वधूनां मुखे जातमकस्मादर्धकुङ्कुमम्॥
अत्रार्धकुङ्कुमेत्युक्ते सौरभादिगुणान्विता।
यशोऽनुरागयोर्वर्णप्रक्लृप्तिरवगम्यते॥
वधूशब्देन तु दिशां नायिकात्वं प्रतीयते।
न च सम्बन्धगन्धोऽपि वास्तवस्तेषु विद्यते॥ (शृ.प्र. 6.92-94)

अत्र भोजराजेन सनातनकविमतस्य समर्थिका विकल्पात्मकता प्रतिष्ठापिताऽस्ति सम्पूर्णाया वाङ्मयात्मिकायाः प्रतिभैकमूलयाः शब्दैकसृष्टयाः। एवञ्च सनातनकविमते शब्दस्य ज्ञानात्मको विकल्पः अर्थस्य ज्ञानात्मकं विकल्पं स्पृशति। स्पर्श एषोऽपि विकल्परूप एव। सेऽयं विकल्पत्रयी चमत्कारकारितां सती काव्यात्मतां भजते। अत एव काव्यस्य सर्वसहं लक्षणं वर्तते-

विकल्पः सुन्दरः काव्यमिति काव्यस्य लक्षणम्।
सर्वसहं, भवत्यत्र प्रमाणं श्रीपतञ्जलिः॥31॥

सनातनकवय आचार्याः रेवाप्रसादद्विवेदिनः **साहित्यालङ्कारे** निरूपयन्ति यद् यदेव साहित्यं स एवालङ्कारः। द्वयोरप्यस्ति अभेदः। उभावपि 'भूमा' इत्येवंरूपेण कलायाः परमतत्त्वस्योद्घाटनाय प्रवर्तितौ। 'काव्यालङ्कार' इत्येषा संज्ञा पूर्ववर्तिभिराचार्यैरुपात्ता साहित्यशास्त्रस्यकृते तत्प्रवर्तकैः। साहित्यालङ्कारे पुनः काव्यमित्यस्य स्थाने साहित्यमिति पदमुपादीयते। भारतीयायां परम्परायां काञ्चीतः प्रदुर्भूय कश्मीरदेशं प्राप्तवती सैषा साहित्यविद्यावधू आत्मनः संरक्षणाय अवन्तिक्षेत्रं प्राप्नोति। भाट्टप्राभाकरादिभिः मीमांसकैरुपचिता सैषा सहित्यविद्या भर्तृहरिणा योगीन्द्रेण परिपोषं सम्प्राप्य भगवन्तो विश्वनाथस्य पुरीं काशीं लेभे। नव्यन्यायनिकषाञ्चिता साहित्यविद्या गोदुग्धवत् सर्वश्रेयस्करी भगवतो विश्वनाथस्य अभिषेकद्रव्यतां प्राप्नोत्यत्र। साहित्यविद्यायामस्यां साम्प्रतिक्यां ध्वनिसिद्धान्तः प्रत्याख्यातः, शब्दशक्तिवादो निरस्तः, रसस्य आस्वादास्वाद्यवादतामपहाय अभिनवः विकल्पवादः प्रवर्तितः, अलङ्कारः बाह्याङ्गत्वमपहाय तादात्म्यं प्राप्नोति काव्यशरीरे शब्दार्थात्मनि विकल्पैकस्वरूपे यत्र आन्तरिकाश्च शोभादयो अलङ्कारा

प्रमापूता:, काव्यस्य सुन्दरविकल्पात्मकत्वेनास्तित्वमाप्नोति काव्यस्य नवीनं लक्षणम्, अलंब्रह्मवाद: आगमाश्रित: अहंब्रह्मवादवदेव प्रतिष्ठापितश्च साहित्यशास्त्रे विचारणाय विदुषां साहित्यतत्त्वोन्मिषितचेतसाम्।

अलङ्कारात्मवादे क्रान्तिपञ्चकम्

सनातनकविमते साहित्यशास्त्रे अलङ्कारत्मवादे **पञ्चक्रान्तय:** समुपलभन्ते। तत्र-

1. **प्रथमा क्रान्ति:** आगमविरुद्ध: आनन्दवर्द्धनाचार्यप्रवर्तितो ध्वन्यात्मवाद: बौद्धानां शून्यवादेनानुप्राणित: शब्दब्रह्मताया प्रत्याख्यापक: अर्थैकमूलताया: काव्यस्य प्रतिष्ठापक: योऽर्थ: सहृदयश्लघ्य इत्यनने उपक्रमेण।

2. **द्वितीया क्रान्ति:** अस्ति अभिधैकशक्तिवादरूपेण प्रवर्तिता ध्वनिविरोधात्मिका क्रान्ति: मुकुलभट्टादीनां मीमांसकानां शब्दैककाव्यात्मताया: प्रतिष्ठापकात्मनाम्।

3. **तृतीया क्रान्ति:** शब्दशक्तिवाद:। नास्त्येव काचित् शब्दस्य शरीरेऽर्थप्रतिपादिका शक्तिरिति शक्तिस्तु शब्दज्ञाने भवति न पुन: शब्दे शब्दस्य जडरूपत्वात् तृतीयक्षणनिष्ठध्वंसप्रतियोगित्वाच्च।

4. **चतुर्थी क्रान्ति:** संशोधनात्मिका क्रान्ति: **साहित्यागमस्य** न्यायपरिष्कारात्मिका धाराधाम्नि भोजराजधनिकधनञ्जयादिभि: प्रवर्तमाना।

5. **पञ्चमी क्रान्ति:** विकल्पवादात्मिका, सनातनकविना प्रवर्तिता काशीस्थेन यत्र पुन: सम्पूर्णस्यापि काव्यव्यापारस्य ज्ञानैकरूपता सिद्धान्तिता भवति महर्षे: पतञ्जले: योगसूत्रमवलम्ब्य ज्ञानैकमूलस्य अपूर्वस्य कस्यापि काव्यलक्षणस्य विधानेन।

(1)

प्रथमा क्रान्ति: आगमविरुद्धा ध्वनिसिद्धान्तप्रतिष्ठापिका आनन्दवर्द्धनाचार्यप्रवर्तिता बौद्धनां शून्यवादानुमोदिका। आनन्दवर्द्धनाचार्य: नासीत् पूर्णतया वैदिक: न च पूर्णो बौद्ध:। असौ बौद्धानां मध्यममार्गमेवानुसरति काव्यात्मनिर्धारणप्रसङ्गे तथाहि-

असौ न वैदिक: पूर्णो नासीत् पूर्णश्च सौगत:।
मार्गेण मध्यमेनासौ प्रावर्त्तत कलाप्रिय:॥70॥

काव्यलङ्कारे अनेन स्वकीय: ध्वन्यालोक इति ध्वनिसिद्धान्तस्य प्रतिष्ठापक: ग्रन्थ: अर्थस्य विवेचनेन प्रारब्ध:। असौ शब्दार्थयो: उभयोरपि काव्यत्वं स्वीकरोति न च स्वीकरोति दण्डिन: श्रुतिमार्ग येन **पदावली काव्यत्वेन** प्रतिष्ठापिता। ध्वनिवादी अलङ्कारस्य आगमाऽपायिताञ्च समुद्घोषयति, या च समर्थिता परवर्तिभि: अभिनवगुप्तादिभि:-

शब्दं विहाय स्वं ग्रन्थमर्थमात्रत एव स: ।
वितेने तेन तस्यास्य प्रच्छन्ना बौद्धतोदभूत् ॥71॥

शब्दार्थौ सहितौ काव्यमिति भामहमार्गिणा ।

आनन्देन श्रुतेर्मार्गी दण्डी नैव प्रमाणितः ॥72॥

अलङ्कारस्य बाह्यत्वमागमापायिताञ्च सः ।

प्राजूघुषदुभे नेत्रे निमील्याऽभिनवप्रियः ॥73॥

सनातनकविमते ध्वनिवादिभिः अग्निपुराणे यः साहित्यशास्त्रस्य आगमः प्रतिपादितः सः क्रूरमवज्ञातः, कथमपि नोल्लिखितः स्वसिद्धान्तग्रन्थेषु । आगमेषु पुनः प्रतीयमानार्थता ध्वनेः प्रतिपादिताऽस्ति। तत्र पुनः आक्षेपादीनां व्यङ्ग्यार्थप्रधानानाम् अलङ्काराणां भेदान्तरत्वेन ध्वनिः परिकल्पितोऽस्ति। भामहः अभिनवगुप्तश्च उभावपि सार्वौ शिवानुयायिनौ बौद्धौ वा प्रच्छन्नत्वेन। अभिनवगुप्ताचार्यः वैदिकस्य शब्दैककाव्यतायाः समर्थकस्य दण्डिनः सिद्धान्तं नानुमोदते। एतेषां मते आसीदाचार्यो दण्डी रसनिष्पत्तिप्रक्रियायाम् उत्पत्तिवादी लोल्लटवत्। वस्तुतः उत्पत्तिवादिनः सन्ति भरतमुनिप्रभृतयः यैः निष्पत्तिशब्दस्य उत्पत्त्यर्थः रसाध्याये भावाध्याये च नाट्यशास्त्रस्य नैकशः प्रतिपादितः पौनःपौनुन्येन[7] –

भरतः स्वयमेवासीदुत्पत्तिप्रतिपत्तिकः ।

यतो द्वाविंशतिं वारानुत्पत्तिं प्रयुयोज सः ॥83॥

तत्राभिनवगुप्तोऽसौ भारत्यां मौनमाश्रितः ॥

दृश्यते सङ्गतिं नैव प्रदर्शयति कामपि ॥84॥

भरतमुनिः अस्ति उत्पत्तिवादस्य प्रवर्तकः आचार्यः सनातनकविमते, न पुनः लोल्लटः यस्य न लभ्यते कश्चनापि ग्रन्थः न वा काऽपि परम्परा । दण्डिनः प्रारभ्य भोजराजं यावत् प्रवर्तमानः काव्यरसविचारः काव्यामात्राश्रितः मञ्चाश्रितो वा आसीत् । अभिनवगुप्तादिभिः सहृदस्य पाठकस्य वा रसानुभूतेः विचारः कृतः तस्याः समाधानाय रसस्य अलौकिकता लोकोत्तरता च प्रायेण सर्वत्रैव प्रदर्शिता ।

सनातनकविमते अलङ्कारशब्दे अलम् इत्येव पदं प्रधानभूतम् । अनेन सहृदयानां चेतसि जायमाना महती विश्रान्तिरूपा तृप्तिः सङ्केतिता । यः खलु 'कार' इत्येष प्रत्ययोऽत्र विद्यते स च स्वार्थकः ॐकारः, अहङ्कारः, चमत्कारः, अकारः, ककारः एतादृशेषु प्रयोगेषु यथा । अलमिति यदि द्वितीयान्तम् अव्ययपदं स्वीक्रियते तर्हि तस्य कुम्भकारवद् व्युत्पत्तिर्भविष्यति 'अलं करोतीति'। सनातनकविमते रसवदित्यस्मिन् प्रयोगे रसवत् इति शब्दः विशेषणीभूतः पदस्य काव्यस्य वा । रसवदित्यत्र रसयुक्तता प्रमाणीभवति काव्यस्य । काव्ये विद्यमाना रसाभिव्यञ्जिका सामग्री रसपदेन वाच्या भवति । भोजराजेन एनामेव सामग्रीमभिलक्ष्य रसोक्तिरिति काव्यधर्मः अलङ्काररूपः स्वीकृतः।

सनातनकविमते अलङ्कारः अन्तरङ्गो भवति काव्येऽपि न पुनः बहिरङ्गभूतः[8] यथा ध्वनिवादिभिः स्वीकृतः । शोभाविलासादयो धर्माः सौभाग्यवत्याः सौभाग्यञ्च यथा अन्तरङ्गतां भजते तथैव अलङ्कारा अपि काव्ये । ध्वनिवादिभिः स्वीकृता अलङ्काराणां बहिरङ्गता एवं निराकृताऽस्ति साहित्याङ्कारे सनातनकविना -

अन्तरङ्गा अलङ्कारा: शोभादय इव स्मृताः ।
गुणा अपि त उच्यन्ते भरतादिमहात्मभिः ॥87॥
सौभाग्यवत्याः सौभाग्यं किमिति प्रश्न उत्थिते ।
पतिरित्युत्तरेणैव ननान्दा शममेति किम् ॥88॥

काव्ये या रसाभिव्यञ्जिका विभावादिरूपेण विद्यमाना सामग्री सा पुनः गुणत्वमाप्नोति अलङ्कारत्वं वा यतो हि आभ्यां अतिरिक्तं तृतीयं काव्यतत्त्वं काव्यधर्मरूपतां नाप्नोति । विभावादयः काव्ये रसस्य अभिव्यञ्जकः यदि रसरूपेण समुच्चरिताः तर्हि एतेषां अपि अलङ्काररूपतैव प्रमाणीभवति काव्यधर्मत्वात् ।

आनन्दवर्द्धनाचार्यस्य पूर्ववर्तिभिः काव्यालङ्कारकर्तृभिः ध्वनिः कथमपि काव्यस्य परात्परो धर्मः न स्वीकृतः । सर्वैः अलङ्कार एव काव्यस्य आत्मा प्रतिष्ठापितः । न पतिता एते ध्वनिरूपिणि अन्धकूपे साहित्यागमे विश्वसितवन्तः -

आनन्दवर्धनात् पूर्वं काव्यालङ्कारशास्त्रिणः ।
येऽजायन्त न तैरेषा ध्वनिसंज्ञाऽभ्युदीरिता ॥ 98॥
तैः सर्वैरैकमत्येन काव्यात्मत्वेऽभ्यषेच्यसौ ।
अलङ्कारो, ध्वनिध्वान्ते व्यलीयन्त न ते समे ॥99॥

(2)

द्वितीया क्रान्तिः अस्ति **अभिधैकशक्तिवादरूपेण** प्रवर्तिता ध्वनिविरोधात्मिका रुद्रट-मुकुलभट्टमहिमभट्टादिभिः प्रवर्तिता । धाराधामाचार्याः भोजराज-धनिक-धनञ्जयप्रभृतयो अस्य प्रवर्तकाः। आगममार्गिणः एते रसतत्त्वस्य भूमत्वाद् आमनन्ति ब्रह्मैकरूपताम् अलम्भावात्मताञ्च ।

अस्यां ध्वनिविरोधात्मकम् अभिधैकवादं सनातनकविकवयः प्रतिष्ठापयन्ति । परवर्तिषु आचार्येषु अभिनवगुप्तः, मम्मटः, जयदेवः, विश्वनाथ अच्युतरायमोडकादयश्च ध्वनितत्त्वस्य काव्यात्मत्वं

स्वीकुर्वन्ति इति सर्वविदितम् । किन्तु तेष्वेव मुकुलभट्टः, राजशेखरः, कुन्तकः, क्षेमेन्द्रः, महिमभट्टः, जयरथः, भोजराजादयः ध्वनितत्त्वस्य काव्यात्मत्वं न स्वीकुर्वन्ति । एतेषु अनेके अभिधावादिनः। व्यक्तिविवेककारः महिमभट्टः स्वकीये व्यक्तिविवेके ध्वनितत्त्वस्य अनुमाने अन्तर्भावं प्रतिष्ठापयति, तल्लक्षणे च दोषानुद्घाटयति विस्तरेण। एतेषां मते–

काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद् विमतिः

संज्ञायां सा केवलम् एषापि व्यक्त्ययोगतोऽस्य कुतः॥ 1.26॥

आचार्यो भोजराजः शृङ्गारप्रकाशे ध्वनिमामनति, किन्तु स्वरूपभेदेन । परवर्तिषु आचार्येषु जयरथः अलङ्कारसर्वस्वविमर्शिन्यां द्वादशभिः तर्कैः[9] ध्वनितत्त्वस्य प्रत्याख्यानं प्रतिपादयत्येवं -

तात्पर्या शक्ति[1] रभिधा[2] लक्षणा[3] अनुमिती[4-5] द्विधा

अर्थापत्तिः[6-7] क्वचित् तन्त्र[8] (मीमांसा) [9]समासोक्त्याद्यलकृतिः।

रसस्य कार्यता[10] भोगः [11] व्यापारान्तरबाधनम् [12] (व्यञ्जनायाः बाधनम्)

द्वादशेत्थं ध्वनेरस्य स्थिता विप्रतिपत्तयः॥

पूर्ववर्तिषु आचार्येषु प्रतीयमानशब्दः व्यङ्ग्यार्थस्य कृते बहुप्रयुक्तः संदृश्यते । प्रतीयमानशब्दस्य स्थाने ध्वनिशब्दं व्यवहरन्ति ध्वन्यात्मवादिनः। एतेषां मते व्यङ्ग्यप्राधान्ये ध्वनिरित्यस्ति कश्चिदाग्रहः।

एवं च वसिष्ठाय महर्षये अग्निदेवेनोपदिष्टे साहित्यशास्त्रस्य आगमरूपेण प्रतिष्ठिते अग्निपुराणस्य एकादशाध्यायात्मके **अहङ्कारागमे** उभयालङ्कारप्रसङ्गे ध्वनितत्त्वं प्रत्याख्यातं वर्तते॥

अग्निपुराणे उपस्थितस्य अहङ्कारागमभागस्य अज्ञातकर्तृका 'काव्यप्रभावृत्तिः' इत्येषा टीका समुपलभ्यते। अस्याः प्रथमं प्रकाशनं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयतः द्वितीयं प्रकाशनं सम्पाद्य संशोध्य च कालिदाससंस्थानतः सद्य एव सञ्जातम्।[10] अग्निपुराणस्य अहङ्कारागमस्य काव्यप्रभावृत्तौ अनुल्लिखितनामा, किन्तु बाढं दाक्षिणात्यः, तत्रापि काशिकेय एव आचार्यः भिन्नतया ध्वनितत्त्वं विस्तरेणोपस्थापयति। असौ अनार्षत्वं घोषयति तस्य ध्वनिवादस्य । अग्निपुराणस्य अहङ्कारागमस्य प्रथमायां कारिकायां पुराणकारः वाङ्मयं चतुष्प्रकारकं स्वीकरोति एवम् -

ध्वनिर्वर्णः पदं वाक्यम् इत्येतद् वाङ्मयं मतम् ।

शास्त्रेतिहासकाव्यानां त्रयं यत्र समाप्यते ॥

कारिकायाः अस्याः काव्यप्रभावृत्तौ आचार्यः ध्वनितत्त्वं पूर्वं संकेतेन विवेचयति तदनन्तरं उभयालङ्कारेषु अभिव्यक्त्यलङ्कारस्य आक्षेपनाम्नि भेदे अस्य अन्तर्भावं प्रतिपादयति विस्तरेण। आचार्योऽसौ पूर्वं ध्वनिविषये कथयति एवम् -

श्रुत्यर्थातिरिक्तार्थध्वननाद् ध्वनिरुच्यते।

वक्तृणामप्यभिव्यक्तिविशेषाक्षेप उच्यते।

वाङ्मयशास्त्रादिविषयत्वात् श्रवणेन्द्रियग्राह्योऽर्थस्तु शब्दो ध्वनिः।

स तु ध्वनिः द्विविधः एको ध्वनिमात्ररूपो वीणादिसम्भवो निरर्थकः, अपरो वर्णमयः सार्थकः। तत्रार्थो मुख्यो लाक्षणिको गौणो व्यङ्ग्यश्चेति । **ते चत्वारोऽर्था वर्ण्याः**, ते च वर्ण्याः यैर्ध्वनिभिर्वर्ण्यन्ते, ते च वर्णा अकारादयो ध्वनयः शिक्षाध्याये उपदिष्टाः **'श्रुत्यर्थवन्तो ध्वनयः शब्दा वर्णा'** इति।

साहित्यशास्त्रस्य आगमरूपेण प्रतिष्ठिते अग्निपुराणे आनन्दवर्धनाचार्यस्य ध्वनिः अभिव्यक्तिरित्यनेन उभयालङ्कारेण गतार्थतां भजते एवम् -

प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि।

तस्या भेदौ श्रुतिस्तत्र शाब्दं स्वार्थसमर्पणम॥

अभिव्यव्यक्तिर्नामोभयालङ्कारः प्रकटत्वमर्थानां व्यक्तीकरत्वम्। सा खलु प्रवृत्तिः शब्दानामर्थाभिव्यक्तिकरी शक्तिः। 'अभिव्यक्तिः' इत्यस्य उभयलाङ्कारस्यास्य द्वौ भेदौ भवतः श्रुतिः आक्षेपश्च। तत्र श्रुतिर्नामाभिव्यक्तिः शाब्दं शब्दकृतं स्वार्थस्य समर्पणम्। 'शब्दार्थसमर्पणम्' पुनः शब्देन अर्थः समर्प्यते अभिव्यक्तीक्रियते।

सा चैषा श्रुतिः द्विप्रकारा भवति - **नैमित्तिकी पारिभाषिकी च। नैमित्तिक्यां श्रुतौ निमित्तं त्रिविधं जातिश्च, गुणश्च क्रिया चेति ।**

उभयालङ्कारस्य द्वितीयभेदरूपेण प्रवर्तिते आक्षेपालङ्कारे ध्वनिशब्दव्यवहारः समुपलभ्यते-

श्रुतेरलभ्यमानोर्थो यस्माद् भाति स चेतरः।

स आक्षेपो ध्वनिः स्याचच ध्वनिना व्यज्यते यतः॥9.15॥

शब्देनाऽर्थेन वा यत्र कृत्वा स्वमुपसर्जनम्।

प्रतीषेध इवेष्टस्य यो विशेषाऽभिधित्सया॥9.16॥

तमाक्षेपं ब्रुवन्ति...........

अत्र 'ध्वनिना' इत्यस्य अर्थो वर्तते आक्षेपनाम्न्याभिव्यक्त्या व्यज्यते इति । तदेतदुपसर्जनं शब्दार्थयोरुभयोरपि आक्षेपालङ्कारस्य स्वरूपं नियमयति । आनन्दवर्द्धनाचार्येण प्रवर्तितस्य -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ध्वन्यालोकः 1.13॥

इत्यस्य स्वरूपं अग्निपुराणस्य आक्षेपालङ्कारलक्षणे प्रत्यक्षं समुपलभ्यते । उभयत्रापि शब्दार्थयोरुपसर्जनीभावं प्राधान्यं विभर्ति । काव्यप्रभावृत्तिकारः अत्र ध्वनेः अनार्षत्वं उद्घोषयति। एतेषां मते अभिव्यक्त्यलङ्कारस्य आक्षेपभेदस्य पुनः पञ्चप्रकाराः भवन्ति । तद्यथा -

स्तुतं स्तोत्रं समासोक्ति: अपह्नुति: पर्यायोक्तिश्चेति । एतेषाम् आक्षेपालङ्कारस्य पञ्चप्रकाराणाम् एकत्र युगपदुपस्थापने समाख्या ध्वनिर्भवति -

एषामेकतमस्यैव समाख्या ध्वनिरित्यत: । इति ।

एषां पञ्चानामाक्षेपाणां सङ्गे खल्वेकत्रावस्थाने सतीत्यत: समं युगपदित्यत: समाख्या नाम ध्वनिरुच्यते । समाख्यानामकं ध्वनिं सोदाहरणं विवेच्य काव्यप्रभावृत्तिकार: बुधै: समाम्नातपूर्वस्य ध्वनितत्त्वस्य अनार्षत्वमुद्घोषयति एवम् -

''एतेन शब्दव्यङ्ग्यमर्थव्यङ्ग्यमुभयव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्यार्थव्यङ्ग्यमित्येवं ध्वनयो अनृषिभिर्बुधैयत् स्वबुद्धया कल्प्यन्ते तदसाधु आर्षत्वाभावादिति । इत्येषा अभिव्यक्ति: श्रुतिराक्षेपश्चेति द्वयी शब्दार्थोभयालङ्कार इति ।''

राजशेखरसूरिणा पुन: काव्यमीमांसायां माणिक्यपुञ्जे संवादभेदे सर्व: ध्वनिप्रपञ्च: गतार्थतां नीत: -

काव्यं मीमांसामानेन राजशेखरसूरिणा
माणिक्यपुञ्जे संवादभेदे गीर्णो ध्वनि: सम: ॥ का.मी.101॥

रुद्रटाचार्येण स्वकीये काव्यालङ्कारग्रन्थे अर्थश्लेषालङ्कारस्य भेदरूपेण ध्वनि: स्वीकृतोऽस्ति एवम्-

यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यं रचितं पदैरनेकस्मिन् ।
अर्थे कुरुते निश्चयमर्थश्लेष: स विज्ञेय: ॥ काव्यालङ्कार: 10.1॥

कुन्तकाचार्य: स्वीकीये वक्रोक्तिजीविते ध्वनिलक्षणं प्रस्तौति, किन्तु तस्य नामापि नोल्लिखति क्वचिदपि। ध्वनि: अनेन वाक्यवक्रतायां समाहित: । तद्यथा -

ध्वनिं नाम्नापि नास्प्राक्षीत् कुन्तकस्तस्य लक्षणम् ।
उद्धरन्नपि वाक्योत्थां वक्रोक्तिं पाययंश्च तम् ॥103॥

न्यायमञ्जर्यां जयन्तभट्टेनापि शब्दशक्तिविचारणायां ध्वनि: समुल्लिखित: किन्तु कवीनामुत्प्रेक्षाक्षेत्रं न विचारणीयम् इत्युक्त्या न्यक्कृत: -

जयन्तो न्यायमञ्जर्यां स्मारितो ध्वनिमुज्जगौ ।
अलं कवीनामुत्प्रेक्षाविषये तत्त्वचिन्तनै: ॥106॥

क्षेमेन्द्राचार्य: औचित्यविचारचर्चायां ध्वनितत्त्वं नोल्लिखति। आसीदसौ बोधवारिधि: ध्वन्यालोकलोचने ध्वनिप्रतिष्ठापयितु: अभिनवगुप्ताचार्यस्य शिष्य: -

श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः ।

आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः ॥

कश्मीरदेशीयाः सन्ति एते आचार्याः यैः कश्मीरदेशीयस्य आनन्दवर्द्धनस्य अभिनवगुप्ताचार्यस्य च ध्वनिसिद्धान्तः प्रत्याख्यातः । सनातनकविमते न केवलं शारदाधाम्नः आचार्याः ध्वनिं न्यक्कुर्वन्ति अपितु महाकालधाम्नः भोजराज-धनञ्जय-धनिकप्रभृतयोऽपि ध्वनिधारां न समर्थयन्ति । भोजराजेन शृङ्गारत्वे रसत्वम् आम्नातम् । शृङ्गारशब्दे शृङ्ग-शब्दः विषयोन्मुखतां प्रकटयति तेनैव सहृदयानां चेतसि रसस्य भोगः जायते ।[11] तन्मते शृङ्गारशब्दस्य व्युत्पत्तिरस्ति- 'शृङ्गमियर्त्ति' इति । अत्र पुनः शृङ्गारशब्दः स्त्रीपुरुषयोः शृङ्गारं परस्परसंसर्गात्मकं नैव सङ्केतयति आचार्यः अस्य सामान्यसंज्ञारूपेण सर्वेषामेव काव्यरसानां प्रतिनिधिभूतत्वात्। सर्वेऽपि रसाः चित्तद्रुतिकारकत्वात् शृङ्गारपदवाच्या भवन्ति । तद्यथा-

अभिमानाद् रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी ।

व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ॥4॥

तभेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः ।

स्वस्वस्थायिविशेषाच्च परिपोषादिलक्षणा ॥5॥

काव्यगुणविचारणायामत्र प्रवर्तमाना संदृश्यते स्वैरता आचार्येषु ध्वनिप्रवर्तकेषु तत्समर्थकेषु च मम्मटादिषु । भरतादिभिः प्रवर्तमाना काव्यगुणस्य शब्दार्थोभयाश्रितत्वेन विंशतिसंख्याका परम्परा[12] ध्वनिवादिभिः न्यक्कृता काव्यागुणत्वेन माधुर्योजप्रसादानां त्रयाणामेव च काव्यगुणानां प्रतिष्ठापनया अन्येषामवशिष्टानाञ्च एतेष्वेवान्तर्भावात्मतया -

ध्वनिमार्गे गुणानां यत् त्रैविध्यं सांख्यवन्मतम् ।

आस्तिकानां ततस्तुष्टं चित्तं हन्त यदृच्छया ॥124॥

भोजराजेन सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कारेण ध्वनिवादिनां गुणविषयिणि सैषा स्वैरता निराकृता एवम् -

एवं स्वैरत्वजुष्टाऽस्ति सृतिर्गुण-विचारणे ।

आचार्याणां समेषां नः शुभाऽसावागमोत्थिता ॥ सरस्वतीकण्ठाभरणम् 3॥

एवमेव जयदेवेन पीयूषवर्षेण चन्द्रालोके मन्दारमरन्दालङ्कारकारेण, साहित्यदर्पणकारेण विश्वनाथेन च ध्वनिवादिनां काव्यगुणत्रयवादिनी स्वैरता तारस्वरेण प्रत्याख्याता । अच्युतरायमोडकः रसस्य काव्यधर्मतां प्रतिपाद्य तस्य काव्यगुणत्वं स्वीकरोति साहित्यसारे स्वकीये एवम् -

धर्मा रसाः लक्षणानि रीत्यलङ्कारवृत्तयः ।

रसिकाह्लादका ह्येते काव्ये सन्ति च षड् गुणाः ॥ साहित्यसारः 1.20 ॥

अच्युतरायेन धर्मधर्मिणोः पृथक्त्वं न स्वीकृतम् । एतेषां मते रसः अलङ्कारतां भजते अलङ्कारश्च रसतां काव्ये । अस्यामेव साहित्यक्रान्तौ ध्वनेः साध्यता काव्यात्मरूपत्वेन न्यक्कृता । रसवदलङ्कारस्य रसयुक्तता प्रमाणीक्रियतेऽत्र रससदृशतामपहाय ध्वनिवादिभिः समर्थिताम् ।

(3)

तृतीया क्रान्तिः शब्दशक्त्यतिरेकतत्वेन सनातनकविभिः स्वीकृता । क्षेमेन्द्रं यावत् शब्दशक्तिवादः साहित्यं नाजघ्ने किन्त्वागमागतोऽलंब्रह्मवादोऽपि नालभत स्थानम् । शब्दज्ञाने शक्तिर्भवति, न पुनः शब्दे, शब्दस्य जडरूपत्वात् । शब्दार्थयोः सहृदयानां बुद्धौ जायमानः कश्चन ज्ञानात्मकः सम्बन्धः साहित्यपदवीं लभते । यदि शब्दस्य शरीरे शक्तिः स्वीक्रियते तर्हि विश्वस्य भाषाऽपि एकैव भविष्यति सूर्ये प्रकाशवत् -

यदि शब्दस्य देहे स्याच्छक्तिः सूर्ये प्रकाशवत ।
ततो विश्वस्य भाषापि भवेदेकैव केवलम् ॥ 261॥

ध्वनिवादिनः यदा काव्यं सरसं विधातुं तत्रस्थं विभावानुभावरूपिणं रसाभिव्यक्तिसामर्थ्यं स्वीकुर्वन्ति तदा कथं तैर्न समुद्घोष्यते सम्पूर्णा काव्यस्था रसाभिव्यञ्जिका सामग्री 'काव्यालङ्कार' इति । ध्वनिवादिभिः रसाभिव्यञ्जकता ध्वनितत्त्वं वा कथं नोद्घोषितं काव्यस्य अलङ्कारविशेष एव । तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वम् इत्यनेन न्यायेन यदि एकत्र रसस्य ब्रह्मरूपता स्वीक्रियते अन्यत्र ब्रह्मणः अलंरूपता, तर्हि अलम् इत्यस्यापि रसरूपता स्वत एव प्रमाणीभवति -

ब्राह्मीभावं रसस्येव मत्वालंभावमेव च ।
तदभिन्नाभेदधिया रसालङ्कारगाऽप्यभित् ॥ 271॥
अलं ब्रह्म रसो ब्रह्म रसालङ्कारयोर्युगम् ।
ब्रह्मैवेत्यागमः श्रौतो बौद्धैरेतैस्तिरस्कृतः ॥ 274॥

(4)

चतुर्थी क्रान्तिः साहित्यागमस्य न्यायपरिष्कारात्मिका धाराधाम्नि भोज-धनिकादिभिः प्रवर्तमाना संशोभते। ध्वनितत्त्वमानन्दवर्द्धनेन प्रवर्तितं धनिकेन अस्वीकृतं तात्पर्येण निगिरिषितञ्च प्रत्यपादि । साहित्यपदप्रयोगः तत्परिभाषणञ्च नैवोपलभ्यते सम्पूर्णायामपि ध्वन्यलङ्कारसम्प्रदायपरम्परायाम्। तदेतत् साहित्यपदं द्वादश-सम्बन्धात्मकं विवेचितं विस्तरेण भोजराजेन शृङ्गारप्रकाशे इदंप्रथमतया। द्वादशसम्बन्धेषु शब्दार्थयोः अष्टौ साहित्यस्य नियामकाः अन्तिमाश्च चत्वारः काव्यत्वस्य नियामकाः। अष्टौ साहित्यस्य

नियामकाः सम्बन्धाः सन्ति- **अभिधा, विवक्षा, तात्पर्य, प्रविभागः, व्यपेक्षणम्, सामर्थ्यम्, अन्वय एकार्थीभावश्चेति** । एतैरष्टसंख्याकैः साहित्यं निष्पद्यते । **दोषहानिः, गुणाधानम्, अलङ्कारयोगः रसावियोगश्च** इत्येतैरवशिष्टैः चतुर्भिः काव्यत्वमादधाति साहित्यम् । अत एव साहित्यकल्पप्रारम्भप्रजापतिः भोजराज इति सनातनकवयः प्रतिष्ठापयन्ति -

साहित्यशास्त्रे साहित्यकल्पाऽऽरम्भप्रजापतिः ।
भोज एव स एवैकः साहित्याचार्यसत्तमः ॥370॥

साहित्यविद्या राजशेखरोपज्ञा । सारस्वतेयः काव्यपुरुषः साहित्यविद्यावधूं वत्सगुल्मे पर्यणैषीद् आनुकूल्यं भजमानः । अद्भुतः विवाहोत्सवः सञ्जातः अनयोः -

सारस्वतेयः काव्याख्यः सुन्दरः पुरुषस्तु ताम् ।
साहित्यविद्यामौमेयीं वत्सगुल्मे व्यवीवहत् ॥ 377॥

विवाहोत्सवेऽस्मिन् भगवती शारदा शैलाधिराजपुत्री पार्वती च सम्बन्धिन्यौ सञ्जातौ भगवान् शिवः ब्रह्मदेवश्च सम्बन्धिनौ । मार्दङ्गिकतां भजते महागणपतिः पुष्करवाद्यानां समुद्घोषेण । प्रमोदभरिता चामुण्डा भैरवश्चात्र प्रहर्षेण श‍ृङ्गारपूर्णं नर्तनं सम्पादयतः समेषां विवाहोत्सवेऽस्मिन् उपस्थितानां प्रमोदाय । नारदः तुम्बुरुश्चात्र स्वकीयैः वीणासमुद्भवैः रवैः सम्पूर्णम् अन्तरिक्षं पूरयामासतुः । पीताम्बरधरः विष्णुः जन्यः सञ्जातः देवगुरुः बृहस्पतिश्चात्र पौरोहित्यमाप्नोति विवाहमङ्गलस्य सम्पादनाय । विवाहोत्सवोऽसौ सम्प्रत्यपि प्रवर्तते कविप्रतिभायां निरवद्यतया । साहित्यविद्यावधोः काव्यपुरुषस्य विवाहानन्तरं कौतुकागारे जायमाना रसलीला सम्प्रत्यपि कवीनामन्तश्चेतसि परिस्फुरन्ती संदृश्यते -

सम्बन्धिन्यौ मिथस्तस्मात् कालादेते बभूवतुः ।
शारदा चैव शैलाधिराजपुत्री च पार्वती ॥378॥
सम्बन्धिनावजायेतां पितामहमहेश्वरौ ।
विवाहयज्ञ एताभ्यामन्वस्थीयत वत्सयोः ॥379॥
मार्दङ्गिको विवाहेऽस्मिन् महागणपतिः स्वकाम् ।
शुण्डां व्यापारयामास पुष्करे रावपण्डिताम् ॥380॥
चामुण्डा भैरवश्चैव प्रहर्षपरमावुभौ।
नर्त्तनं प्रीति श‍ृंङ्गारं कल्पयामासतुर्मुदा ॥381॥
नारदस्तुम्बुरश्चैव वैणिकौ वैणिकै रवैः ।
दिवं चापि नभश्चापि पूरयामासतुर्दृढम् ॥ 382॥

पीताम्बरधरः श्यामः सिन्धुशायी महाहरिः ।
महेन्द्राद्यैः समं जातौ जन्यो गुरुरथो गुरुः ॥383॥
प्रारम्भोऽस्य विवाहस्य जातो यस्मिन् मुहूर्त्तके ।
पर्यवस्यति नारम्भो नित्यमेव प्रवृत्तिभाक् ॥384॥
अनयोः कौतुकागाररसलीला हि दर्पणान् ॥
कवीनामन्तरात्माख्यानधिशेतेऽधुनाऽपि वै ॥385॥

रसायनविशारदौ संजातौ विवाहेऽस्मिन् अश्वनीकुमारौ परिवेषकौ । उभावपि उत्सवेऽस्मिन् समायातान् सर्वान् भोजयेते । सर्वा ऋतवः एकत्रोपस्थिताः संदृश्यन्ते । तेन सर्वासामपि ऋतूनां परिपक्वानि फलान्यासन् उपलब्धानि रसपरिपूर्णानि समेषां विवाहोत्सवे समागतानाम्। अस्मिन् मोहपूर्णे रसपरिपूर्णे चाऽवसरे निर्गुणे निराकारेऽपि ब्रह्मतत्त्वे पिस्पृक्षा जागर्ति मायारूपिण्याः त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेः । सर्वे दर्शनसम्प्रदायाः स्वास्तित्वविषये चिन्तिताः संदृश्यन्ते समयेऽस्मिन् दृष्ट्वा ब्रह्मणः एतादृशीं लौकिकीं प्रवृत्तिं मायातत्त्वान्वेषिणीम्। सर्वेषां तेषां मिथ्यात्वं प्रमाणीभवति ब्राह्मणः निराकारतायाः परित्यागेन त्रिगुणात्मिकतायाश्च सम्प्राप्तये प्रवर्तितत्वेन । सनातनकविमते दर्शनानामेतेषामेतादृशी चिन्ता निराधारा यतो हि कविता तत्र वर्तते दर्शनभूमिकाम् आरुह्य ब्रह्मतत्त्वस्योपदेशाय प्रवर्तमाना समनुसृत्य रसानुगुण्यां सर्वसहृदयाह्लादकरीं लौकिकीं रीतिम् -

समे कालाश्च देशाश्च समे जाताः परस्परम् ।
संप्लुतिं प्राप्य निष्पत्तौ रसानां क्षमातापिताः ॥ 388 ॥
ब्रह्मापि निर्गुणं साक्षात् प्रकृतिं त्रिगुणीतनुम् ॥
पिस्पृक्षत्येव विश्वेषु दर्शनेषु मिषत्स्वपि ॥ 389॥
वयं मृषोऽद्यगात्राणि भवामो दर्शनान्यपि ।
नास्ति हानिः कवित्वं तु दर्शनत्वं प्रपत्स्यते ॥390॥

सनातनकविमते साहित्यदर्शनं महासमुद्रवद् वर्तते यत्र सदानीरा अनेकाः सद्विचाराणां दर्शनानाञ्च लौकिकानां नद्यः सहस्रवर्त्मा भूत्वा संप्लवन्ते । अनेकानि लौकिकानि अनुशासनान्यत्र विद्योतन्ते साहित्यविद्यायां येषां सम्मिश्रणेन संजायते अस्यां कश्चन अद्वितीयः तीर्थराजो प्रयागः विचाराणां लोकानुशासनाय प्रवर्तमानः -

तदिदं यच्च साहित्यं तत् तु सागरसन्निभम् ।
निम्नगानां शती यत्र शतरूपा व्यलीयत ॥ 398॥
अनुशासनजातानि मिलितानि स वै पृथक् ।

प्रयागस्तीर्थराजत्वेऽप्यषेचि निखिलैरपि ॥319॥

सम्पूर्ण साहित्यपदाभिधेयं वाङ्मयं काव्योन्मुखीभूय दर्शनभूमिकामारोहति लोकस्यानुशासनाय सनातनकविमते । तदेतदभिनवं सिद्धान्तं आचार्या रेवाप्रसादो द्विवेदिनः समुपस्थापयन्ति साहित्यशास्त्रविषयकम् अस्यां शताब्द्यां विचारणाय विदुषाम् ।

(5)

पञ्चमी क्रान्तिः विकल्पवादात्मिका वर्तते यत्र सनातनकवयः प्रतिष्ठापयन्ति काव्यस्य विकल्पैकरूपतां - **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** - इत्येतद् पातञ्जलयोगसूत्रं (1.9) परिशील्य । कथयन्त्यत्र आचार्या एवम् -

शब्दज्ञानानुपाती यो विकल्पोऽर्थस्य विद्यते ।

वस्तुशून्यस्य, संकेतस्तयोरेवेति निश्चये ॥514॥

शब्दज्ञानानन्तरं योऽर्थबोधः जायते तत्र वस्तुनः शरीरसम्पर्को न भवति कथमपि अतः बोधोऽसौ महर्षिणा चित्तवृत्यात्मकेन विकल्परूपेण स्वीक्रियते । हिमालयशब्दस्योच्चारणेन तस्य उपस्थितिर्न भवति । यदि स्यात्तर्हि भवेन्महाननर्थः लोकोद्वेजकरः । अत एव शब्दस्योच्चारणेन जायमाना प्रतीतिश्चित्तवृत्यात्मिका भवति । एतदधिकृत्य आचार्याः निराकुर्वन्ति शब्दशक्तिवादमेवम् -

यदि शब्दस्य देहे स्याच्छक्तिः सूर्ये प्रकाशवत् ।

तदा विश्वस्य भाषापि भवेदेकैव केवला ॥ 515॥[13]

सनातनकविमते यथा प्रकाशः सूर्यस्य शरीरे तिष्ठति न तथा शक्तिः शब्दस्य शरीरे। सूर्ये प्रकाशवत् यदि शब्दस्य देहे शक्तिः स्वीक्रियते तदा विश्वस्य भाषाऽपि एका भविष्यति। शब्दस्यार्थबोधकत्वे सर्वेभ्योऽपि समानमेव तिष्ठेदर्थस्य बोधकत्वम्, न भवेत् देश-काल-जाति- जनितं भेदं सर्वत्र दृश्यमानम् अनुभूयमानञ्च । शब्दार्थज्ञानयोः शक्तिः स्वीकर्तव्या ज्ञानात्मयोरेकत्वेनाङ्गीकृतत्वात् -

एवं काव्यस्य या भाषा, यश्चार्थो, या च तद्धियोः ।

शक्तिः, सर्वमिदं सम्वित्स्वरूपं, न ततः पृथक् ॥ काव्यालङ्कारकारिका 121॥

कव्यालङ्कारसंज्ञायाम् अलं-शब्दस्य ब्रह्मरूपतया साहित्यागमे प्रतिष्ठिते पञ्चमी क्रान्तिराविर्भवति साहित्यशास्त्रे । साहित्यागमस्य प्रतिपादके अग्निपुराणागमे अलं-पदस्य ब्रह्मरूपता प्रमाणीभवत्येवम् -

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमलं विभुम् ।

वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ॥[14]

अलम्भावस्य अलङ्कारता प्रमाणीभवत्येवम् । अलम्भावोऽह्यसौ उभयत्र व्याप्रियते सौन्दर्ये

ध्वनिकाया सामग्र्याश्च विभावानुभावादिरूपेण काव्यमात्रे विद्यमानताम् । काव्यस्य ज्ञानैकरूपताम् अलङ्कारस्य ब्रह्मैकरूपताञ्च । प्रमाणीकृत्य नवीना क्रान्तिः प्रवर्तिताऽस्ति सनातनाचार्यैः येन सम्पूर्णमपि काव्यशास्त्राभिधेयं प्रातिभं विश्वं लभते दार्शनिकीं भूमिकां कामपि तत्त्वस्य प्रतिष्ठापिकाम् । ब्रह्मप्रतिपादकत्वेन तल्लाभेन आनन्दैकरूपेण दर्शनशास्त्रस्य अलंभावात्मकस्य काव्यस्य च गन्तव्यं लभते समानतां सत्यपि सरणिभेदे -

काव्यं वाग्, वाक् परं ब्रह्म, ब्रह्म ब्राह्मी सरस्वती ।

सा वीणाधारिणी सा हि नीलकण्ठासना शिवा ॥528॥

शिवो ब्रह्म, शिवा ब्राह्मी, तौ च ते च शिवा-शिवौ ।

वागलङ्कार ओङ्कारकल्पोऽहङ्कारसञ्चितः ॥529॥

इत्थं काशीहिन्दूविश्वविद्यालये साहित्यशास्त्रविषये अभिनवाः सिद्धान्ताः प्रवर्तिताः सन्ति सनातनकविभिः रेवाप्रसाद-द्विवेदिमहाभागैः स्वकीये **'साहित्यालङ्कार'** इत्यस्मिन् अभिनवकाव्यालङ्कारग्रन्थे सद्यः प्रकाशिते अनुशील्य सम्पूर्णां सहित्यतत्त्वान्वेषिणी परम्पराम् अपौरुषेयाद् वेदादिदानीं यावत् प्रवर्तमानाम् । विद्वद्भिरनुशीलनीया एषा समृद्धये साहित्यशास्त्रसरण्याः द्विसहस्राधिकवर्षप्राचीनायाः परम्परितः इदानीं यावदुपलब्धायाः ।[3]

सन्दर्भग्रन्थाः

1. सर्वेषामेव ग्रन्थानां प्रकाशकम् - कालिदाससंस्थानम्, २८ महामनापुरी, पोस्ट-का.हि.वि.वि. वाराणसी 221005
2. प्रणम्य सार्वं सर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
   काव्यालङ्कार इत्येष यथाबुद्धि विधास्यते ॥1.1॥ भामहालङ्कारे ॥
3. काव्ये दोषा गुणाश्चैव विज्ञातव्या विचक्षणैः ।
   दोषा विपत्तये तत्र गुणाः सम्पत्तये यथा ॥
   तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन ।
   न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् ॥ महर्षिः वेदव्यासः ॥
   सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् ।
   विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते ॥
   नाऽकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
   कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥ काव्यालङ्कार 1.11-12 ॥

काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम् । अग्निपुराणम् ॥

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि । (काव्यप्रकाशः 1)

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता । चन्द्रालोकः ॥

शरीरं शब्दार्थौ ध्वनिरसव आत्मा किल रसो. गुणा माधुर्याद्या उपमितिमुखोलङ्कृतिगणः।
सुसंस्थानं रीतिः स किल परमः काव्यपुरुषो

यदस्मिन् दोषः स्याच्छ्रवणकटुतादिः स न परः ॥ 1.1 अलङ्कारकौस्तुभं, कविकर्णपूरकृतम्॥

दोषहानिः गुणाधानं तथालङ्कारयोगिता रसावियोगः कर्तव्यः- भोजराज, शृङ्गारप्रकाश,1।

शब्दार्थयोजनेऽभ्यासं विना नो पूर्णता भवेत् ।

अपूर्णतैव दोषस्तद् दोषाभावश्च पूर्णता ॥205॥

दोषाऽभावोऽप्यसावत्रप्रागभावतया स्थितः ॥

काव्यनिर्माणतः पूर्वं परीहारोऽस्य यन्मतः ॥208 काव्यालङ्कारकारिका, रेवाप्रसादद्विवेदी, प्रकाशक - कालिदाससंस्थानम् , 28 महामनापुरी, पोस्ट काहिविवि, वाराणसी 221005

4. संस्कृतकाव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक - कालिदास संस्थान, 28 महामनापुरी, पोस्ट काहिविवि, वाराणसी 221005, ई. 2007.

5. नैतद् योगसूत्रं साहित्यशास्त्रस्य परम्परायां पूर्ववर्तिना केनाप्याचार्येण समुद्घोषितं काव्यात्मताया निर्धारणाय इतः पूर्वम् । सैषा नवीना समीक्षासरणिः प्रवर्तिताऽस्ति साहित्यालङ्कारे सनातनकविभिः।

6. शृङ्गारप्रकाशः (भागद्वयात्मकः), सम्पादकः रेवाप्रसादो द्विवेदी, सहायकसम्पादकः सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकम्- इन्दिरागाँधीराष्ट्रीयकलाकेन्द्रं, नई दिल्ली, कालिदाससंस्थानं, वाराणसी, पृ. 729, ई० 2007.

7. सम्भोगस्तावत्....गमनाऽनुभवन-श्रवण-दर्शन-क्रीडालीलादिभिर्भावै:**समुत्पद्यते॥**

नाट्यशास्त्रम् 6.4 वृत्तिः॥

ऋतुमाल्यालङ्कारैः प्रियजन-गन्धर्व-काव्यसेवाभिः।

उपवनगमनविहारैः **शृङ्गाररसः समुद्भवति॥** 6.46 वृत्तिः॥

हास्यरसस्थायिभावात्मकः हास्यः विकृत-परिवेषाऽलङ्कार....व्यङ्गदर्शन-दोषोदाहरणादिभि-विभा**वैरुत्पद्यते॥**

शोकस्थायिभावात्मकः करुणः शापक्लेशविनिपतन... इष्टजनवियोग...मोहभयश्रयसंयोगादिभि-र्विभावैः **समुपजायते॥**

क्रोधस्थमिभावात्मकः रौद्रः क्रोधाऽऽधर्षणाधिक्षेपादनृतवचनोपघात-वाक्पारुष्याऽ-भिद्रोह-मात्सर्यादिभिर्विभावै**रुत्पद्यते॥**

उत्साहस्थायिभावात्मकः वीररसः असंयोहाध्यवसाय.... नय विनय बल पराक्रमशक्तिप्रताप-प्रभावादिभिर्विभावै**रुत्पद्यते॥**

भयस्थायिभावात्मकः भयानकः विकृतरवसत्वदर्शन...स्वजनवधबन्धदर्शन- श्रुतिकथादिभि-र्विभावै**रुत्पद्यते॥**

जुगुप्सास्थायिभावात्मकः बीभत्सः अहृद्याऽप्रियाऽचोष्याक्षाऽनिष्टश्रवणदर्शन-कीर्तनादिभि-र्विभाव**वैरुत्पद्यते॥**

विस्मयस्थायिभावात्मकः अद्‌भुतरसः दिव्यजनदर्शनेप्सितमनोरथावाप्त्युपवनदेवकुलादिगमन-सभाविमानमायेन्द्रजालसम्भावनादिभिः विभावै**रुत्पद्यते॥**

8 तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरुपमादिभिः ।

बहुधा व्याकृतः सोऽन्यैः काव्यलक्ष्मविधायिभिः ॥ 1.3 ध्वन्यालोकः॥

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः । अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा: मन्तव्याः कटकादिवत् ॥2.6 /3.5 वृत्तिः ध्वन्यालोकः ॥

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥ 8.4 काव्यप्रकाशः ॥

9. साहित्यशास्त्रसमुच्चयः (5.2 भागः), अलङ्कारसर्वस्वम्, जयरथस्य विमर्शिनी, श्रीविद्याचक्रवर्तिनः सञ्जीविनी, समुद्रबन्धस्य विवरणम् इति टीकात्रययुतं सहृदयलीला च । सम्पादकौ रेवाप्रसादो द्विवेदी, सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकम् कालिदाससंस्थानम् , 28 महामनापुरी, पोस्ट काहिविवि, वाराणसी 221005, ई० 2020, पृ० 28

10. साहित्यशास्त्रसमुच्चयः (सप्तमो भागः), अलङ्कारशास्त्रागमः, अग्निपुराणस्य काव्यप्रभाटीकासहितः, विष्णुधर्मोत्तरपुराणागमः, सम्पादकौ रेवाप्रसादो द्विवेदी, सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकं कालिदाससंस्थानम् , 28 महामनापुरी, पोस्ट काहिविवि, वाराणसी 221005, ई० 2017

11. **शृङ्गं भावाङ्कुरो गूढ आरस्तु तद्‌गतो रसः ।**

स्युः शृङ्गारसंवलिता रसा हास्यादयो यदा ॥

शृङ्गारस्य इयमेव व्याख्या भोजराजेन शृङ्गारप्रकाशे बाहुल्येन विधीयते एवम् -

शृङ्गारमाहुरिह जीवितमात्मयोनेः (1.3);

शृङ्गार एव हृदि मानवतो जनस्य (1.5);

शृङ्गारमेव रसनाद् रसमामनामः (1.6) इति च ।

12. **श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता**

अर्थव्यक्तिरुदारत्वं ओजः कान्तिः समाधयः ॥

इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणा स्मृताः ।

एषां विपर्ययो काचित् दृश्यते गौणवर्त्मनि ॥ काव्यलक्षणादर्शः 1.41॥

13. काव्यालङ्कारकारिका (अभिनवं काव्यशास्त्रम्), कारिका 120, रेवाप्रसादो द्विवेदी, प्रकाशकम्- कालिदाससंस्थानम्, 28 महामनापुरी, पोस्ट- काहिविवि, वाराणसी 221005, ई. 2014 तृतीयं संस्करणम् ॥

14. साहित्यशास्त्रसमुच्चयः(सप्तमो भागः), अलङ्कारशास्त्रागमः, अग्निपुराणस्य काव्यप्रभाटीकासहितः, विष्णुधर्मोत्तरपुराणागमः, कारिका 3.1, सम्पादकौ रेवाप्रसादो द्विवेदी, सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकं कालिदाससंस्थानम्, 28 महामनापुरी, पोस्ट काहिविवि, वाराणसी 221005

काव्यप्रकाशमङ्गलश्लोकेकाश्मीरशैवदर्शनसिद्धान्तः

डॉ. पवनकुमारः, सहा. आचार्यः,
राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, लखनऊ

वाग्देवतावतारः श्रीमान् मम्मटाचार्यः चिकीर्षितस्य काव्यप्रकाशग्रन्थस्य आरम्भे मङ्गलमाचरतिस्म- **नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्। नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥**

शेषनागस्यावतारः तत्रभवान् पतञ्जलिः पाणिनीयव्याकरणस्य महाभाष्यं विरच्य पश्चाद्वर्तिनां विदुषां परमादरपात्रतां लेभे। भाष्याब्धिः क्वातिगम्भीरः इत्येवं भाष्यप्रदीपटीकाकृता प्रशंसितः 'शेषविभूषणमीडे शेषाशेषार्थलाभाय'-इत्येवं नागेशभट्टेन समीडितश्च यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमित्येवं परमादरणीयतांश्रितः पतञ्जलिः मङ्गलस्य शास्त्रप्रथने शास्त्रकृत्कल्याणे अध्येतृकल्याणे च हेतुतां प्रतिपादयन् सुस्पष्टमुद्घोषयतिस्म-

'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि आयुष्मत्पुरुषाणिच भवन्ति, अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति' इति।[1]

तदेतत् पतञ्जलिमुनिवचनं हृदि निधाय आचार्यमम्मटः ग्रन्थादौ नियति कृतेत्यादिमङ्गलमाचरतिस्म।

ग्रन्थस्यास्य काव्यप्रकाशसंज्ञकस्य कारिकात्मकं सूत्रं तद्व्याख्यानरूपां वृत्तिं च विरचयन् मम्मटाचार्यः उदाहरणानि अन्यदीयानि गृह्णाति स्म। सोयं वृत्तिमारभमाणः अवतरणिकां मङ्गलारम्भपद्यस्य प्राह- **ग्रन्थारम्भे विघ्नविघाताय समुचितेष्टदेवतां ग्रन्थकृत् परामृशति इति।**[2]

संस्कृतवाङ्मयस्य या काऽपि विषयशाखा भवतु तदीयः कश्चनापि ग्रन्थः न्यायपदवाच्यपञ्चावयवात्मा भवतीति पण्डितराजश्रीराजेश्वरशास्त्रिचरणा मध्येसभं प्रतिपादयन्ति स्म। उक्त्या अर्थापत्त्या अध्याहृत्या वा ग्रन्थे प्रतिज्ञावाक्यम्, हेतुवाक्यम्, उदाहरणवाक्यम्, उपनयवाक्यम् निगमनवाक्यं च समाविष्टं भवति।

पञ्चाङ्गकं वाक्यं ग्रन्थोऽभिधीयते। कश्चन संशयः समापद्यते स नूनं कंचिद् विषयम् समाश्रयति। तत्र संशयस्य विनिवृत्त्यै कश्चन समाधानाभासः पूर्वं समापतति चेत् स पूर्वपक्षतया उदीर्यते। अथ युक्तिदौर्बल्यात् समाधानाभासः परित्यज्यते तदा उत्तरपक्षः समाधानात्मा अवतरति। अथ पूर्वोत्तरपक्षयोः सतोः कस्य समाधानरूपता समादरणीया भवेदिति जिज्ञासायां यत्र कल्पनालाघवं

भवेत् तर्कप्राबल्यं भवेत्। प्रमाणान्तरबाध्यता च नापतेत् स एवोत्तरपक्षतया समादरणीय इति निर्णयः यदा प्राप्यते तदा संशयः अपसृतो भवति विषयश्च सुविमृष्टो भवतीति समाधाननिर्णय एव विचारफलतया समुपस्थितोऽभिनन्द्यते। यदुच्यते-परिच्छेदो हि पाण्डित्यम् इति। यथोक्तम्-

विशयो विषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।

निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।। इति[3]

एतादृशस्य ग्रन्थस्य आरम्भे नाम लक्षणावृत्त्याश्रयणात् आरम्भप्राक्काले इत्येवमर्थः प्रतीयते। अत्र तावद् आद्याकृतिरूपो मुख्यार्थो बाधितो भवति। प्रयोजनं चात्र भवति-झटिति विघ्नविघातसामर्थ्यप्रतिपत्तिः। यथा मुक्तये हरिं भजतीत्यत्र तादर्थ्ये चतुर्थी भवति तथैवावतरणिका-वाक्ये विघ्नविघातायेत्यत्र तादर्थ्ये चतुर्थी ज्ञेया।

विघ्नो नाम ग्रन्थसमाप्तिप्रतिबन्धकीभूतः पापव्यूहः। तादृशविघ्नस्य विघातो नाम विशिष्टो ध्वंसः विघ्नविघातस्तस्मै विघ्नविघाताय प्रयोजनसिद्धये ग्रन्थकृत्=आचार्यमम्मटः कारिकात्मसूत्रकृत् वृत्तिग्रन्थारम्भे अवतरणिकावाक्येन समुचितेष्टदेवताम्=समुचिताम्=योग्याम्=प्रतिपाद्यविषयानुरूपाम्, इष्टाम्=आराध्याम्, देवताम्=भारतीं सर्वनमस्याम्, परामृशति=अभिनन्दयन् स्तौतीत्यर्थः। तथा चात्र शाब्दबोधः समुदेति-ग्रन्थारम्भप्राक्कालिकः विघ्नविघातफलकः समुचितेष्टदेवताकर्मकः ग्रन्थकृन्मम्मटाचार्यकर्तृकः परामर्शनानुकूलो व्यापारः इति व्यापारार्थमुख्यविशेष्यकः।

नियतिकृतेत्यादिमङ्गलपद्यस्य अन्वयस्तावत्-

कवेः नियतिकृतनियमरहिताम्, ह्लादैकमयीम्, अनन्यपरतन्त्राम्, नवरसरूचिरां निर्मितिम् आदधती भारती जयति। कवेः कीदृशी निर्मितिः याम् आदधती भारती जयति इति जिज्ञासायाम् निर्मितिविशेषणतया चत्वारि पदानि मङ्गलपद्ये संनिवेशितानि। तत्र **प्रथमं** पदम् नियतिकृतनियमरहिताम् इति। नियत्याकृतः नियतिकृतः सचासौ नियमः तेन रहिता ताम् इति समस्तपदस्य व्युत्पत्तिः। तत्र नियतिस्तावद् असाधारणो धर्मः यथा पद्मस्यासाधारणो धर्मः पद्मत्वम्, तत्कृतो नियमः प्रथते-यत्र पद्मत्वं तत्र सौरभविशेषः इत्येवमात्मिका व्याप्तिरिति नियमः। एतन्नियमेन रहिता कविवाङ्निर्मितिः भवति। कविवाङ्निर्मितौ कान्तामुखेऽपि कविप्रतिभानिर्मित-सौरभविशेषः सन्तिष्ठते। नियतिः=दैवम् तच्च अदृष्टम् तच्च आमुष्मिकस्वर्गादिजनकं भवति। अदृष्टकृतोनियमो भाति- स्वर्गादियोग्य -शरीरान्तरोत्पादनद्वारैव स्वर्गोपधायकत्वरूपः तद्रहितः निर्मितिः कविभारतीकृता भाति। कविनिर्मितौ अनेनैव देहेन स्वर्गप्राप्तेः सद्भावो राजते- 'स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनि।' इति सूक्तिः प्रथते।

द्वितीयं निर्मितिविशेषणम्-ह्लादैकमयीम् इति।[4]

एकं (वस्तु) प्राचुर्येण प्रस्तुतं यस्यांसा-एकमयी। ह्लादेन एकमयीति अभेदे तृतीया। सुप्सुपेतिसमासो नतुकर्मधारयः। ह्लादमात्रप्रचुरा कविवाङ्निर्मितिर्भाति।

तृतीयं निर्मितिविशेषणम्-अनन्यपरतन्त्राम् इति। अन्यस्य=भारतीभिन्नस्य-समवायिप्रभृतित्रिविधकारणस्य परतन्त्रा या निर्मितिर्न भवति तादृशीं निर्मितिम् आदधती कविभारती जयति।
चतुर्थं निर्मितिविशेषणम्-नवरसरुचिरामिति। नवसंख्याकाः शृङ्गारादयः रसाः, अभिनवा वा रसाः यस्यां सा नवरसाः नवसंख्याकाः नवरसा चासौ रूचिरा=नवरसरूचिरा- कर्मधारयः। यतः नवरसा अतएव मनोहरा इत्यर्थः।

सेयं कविवाङ्निर्मितिः सर्वोत्कृष्टा वर्तते। यतश्च अस्याः प्रतियोगिभूता ब्रह्मणःसृष्टिः अपकृष्टा विद्यते। कथमितिचेद् वृत्तौ हेतुः मृग्यताम्। यथोक्तम्-

नियतिशक्त्या नियतरूपा सुखदुःखमोहस्वभावा परमाण्वाद्युपादानकर्मादिसहकारिकारणपरतन्त्रा, षड्रसा नचहृद्यैव तैः, तादृशी ब्रह्मणो निर्मितिर्निर्माणम्। एतद्विलक्षणा तु कविवाङ्निर्मितिः। अतएव जयति। जयत्यर्थेन च नमस्कार आक्षिप्यते, इति तां प्रत्यस्मि प्रणत इति लभ्यते।।

अत्र जयत्यर्थेन च नमस्कार आक्षिप्यते-इत्येषा उक्तिः काश्मीरशैवागम- सिद्धान्तरहस्यज्ञता तत्रभवतो भवतः आचार्यमम्मटस्य विज्ञापयतीति-श्रीमदीश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी-तद्विज्ञातुं विमर्शनीयतामर्हतीति दिक्।

पादटिप्पण्यः

1. भूवादयोधातवः इतिसूत्रस्थमेतत्भाष्यवचनम्।
2. काव्यप्रकाशः-झलकीकरटीकासहितः पृ.-1
3. तदेव पृ. 1
4. तदेव पृ.-346

वैदिकवाङ्मये शिक्षादर्शनस्यावधारणा

प्रो० रामसुमेरयादवः
पूर्व अध्यक्षचरः
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभागः
लखनऊ विश्वविद्यालयः
लखनऊ

वेदोऽखिलो धर्ममूलमिति श्रेष्ठविचारः परमो प्रसिद्धः। शिक्षा समाजस्य कृते आवश्यकी वर्तते। शिक्षाशब्दः संस्कृतभाषायाः शिक्ष धातोः टाप् प्रत्यये कृते निष्पन्नः भवति। शिक्षायाः अर्थः, शिक्षाक्षणं विद्याग्रहणंमध्यमनं ज्ञानार्जनोपासनं विद्यादानमित्यादयः भवन्ति।

शिक्षाविद्योपादाने इत्यत्र विद्यायाः उत्पादानां प्रसिद्धम् । शिक्षामानवजीवनस्योत्कृष्टतायाः मूल्यवान् कोशः। यमवाप्य किमप्यवशिष्टं न भवति। शिक्षायं जीवनादर्शरूपे जीवितुं कलां प्रददाति। मानवीयशिक्षाग्रहण मानवप्रवृत्तिः । बालकाः शैशवादेव शिक्षार्जनं प्रत्यग्रसराः भवन्ति । तेन केवलं निजानुभवैः शिक्षा ग्रहणन्ति अपितु मातृपितृभ्रातृभगिनीत्यादयः शिक्षां धारयन्ति ।

''आचार्यस्ततक्षनभसी उभे इमे,
उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च,
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी,
तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।[1]

वेदाः मानवीयशिक्षायाः आकरग्रन्थाः स्वीक्रियन्ते। शिक्षाक्षया प्राप्तेन ज्ञानेन मोहनाशो भवति। श्रीमद् भगवद्गीतायामष्टादशोध्याये गुरोः शिक्षायाः महिम्नः गानं दृश्यते-

नष्टो मोहः स्मृतिलब्धा तव प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥[2]

संस्कृतानुसारेण शक्तुं शक्तो भवतुमिच्छा शिक्षा भवति। शिक्षा शिक्षाक्ष्यतेऽनयेति वर्णायुच्चारण लक्षणम्। शिक्षाक्ष्यते इति वा शिक्षा वर्णादयः। शिक्षाक्षैव शिक्षा दान्दसम्।[3] वर्णः स्वरः मात्रा बलम्। साथ संतानः।

वर्णस्वराद्युच्चारण प्रकारो या? शिक्षाक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा[4]

अग्निपुराणे शिक्षा परिभाषिता-

सुतीर्थादगतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम् ।

सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते॥[5]

वैदिकवाङ्मयं विश्वस्य सर्वातिप्राचीनतमं वाङ्मयमस्ति। तत्र संहिता ब्राह्मण-आरण्यकोपनिषद् वेदाङ्गादयः परिगणिताः। वेदाः एव प्राचीनकाले ऋषिभिः निजप्रातिभेन विविधानां शिक्षाक्षानां सञ्चयनं विहितं तद्धि न केवल मानवानां कृतेऽपितु समेषां प्राणिनां कृते शिवङ्कारि वर्तते। वेदाः भारतीयसंस्कृतेः स्तम्भभूतास्सन्ति । वेद शब्दः विद् ज्ञाने धातोः धञ् प्रत्यये संसिद्धयति। इष्टप्राप्तयेऽ निष्टष्ट निवारणायोपायस्वरूपाः स्वीकृताः।

अर्थात् इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं निर्दिशति यो ग्रन्थो वेदमतिः सः वेदः। धर्म-दर्शन-संस्कृति समाज-राजनीति-अर्थ-कार्यसम्बन्धिनां शिक्षानामाकरः वेदा एव । संहिता शब्दस्य शाब्दिकोऽर्थः, सङ्कलनं भवति। संहिता पद कृतिः। तथा च वर्णानामेकं प्राणयोगः संहिता प्राथम्येन संहिताक्रमे ऋग्वेद संहितान्तर्गते ऋचारूपेण शिक्षा उद्घाटिता।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्य जुस्तस्मादजायत ॥[7]

अमूल्यानां शिक्षानायवलोकनं ऋग्वैदिकसंहितानां मध्ये भवति। तत्रलोकव्यहाराणां विस्तृतं प्रतिष्ठापनं वर्तते।

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म।

वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरऽती॥[8]

धार्मिकसूक्तैरग्नि-इन्द्र-वरुणादिदेवानां स्तुत्यर्थ शिक्षा प्राप्यते। दार्शनिकसूक्तेषु जीवजगतसृष्ट्यादीनां रहस्यात्मिकी शिक्षा विविधस्थलेषु द्रष्टुं शक्यते। नासदीय सूक्त[9] पुरुषसूक्त[10] तथा हिरण्यगर्भ सूक्तेषु[11]

नानाविधयुताः दार्शनिकीशिक्षा अवलोक्यते।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।[12]

ऋग्वेदे विविधाः सूक्ताः वर्णिताः ये सरमा प्रयाणि संवादे[13] चौरकर्म निषेधार्थ यम-यमी संवादो[14] मर्यादिताचरणाय तथा च विश्वामित्र-नंदी संवादे[15] शिष्टाचराय शिक्षोपलभ्यते। उदाहरणस्वरूपं विश्वामित्रेण नदीस्वरूपाः मातुः प्रति विहित्य निवेदनानि शिष्टाचरणसम्बन्धिमीं शिक्षां धोतयन्ति।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरूपं मुहूर्तमेवैः।

मच्छा बृहती मनीषावस्युरवे कुशिकस्य सूनुः ॥[16]

यजुर्वेदेऽपि एतादृश्यः शिक्षाः प्राप्यन्ते। वाजसेनयीसंहितायां दर्शपौर्णमासयज्ञसम्बन्धिनी-शिक्षा अधोलिखिते सूक्ते द्रष्टव्या।

कस्त्वा मुनक्ति स त्वां मुनक्ति कस्मै त्वा मनुक्ति तस्मै त्वां मनुक्ति कर्मणे वां वेषाय कम्।

एततिरिक्तं वैदिककाले चातुर्मासस्य यज्ञस्य वर्णनं प्राप्यते।

सुसवमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्र जुहोतन। अग्नये जातवेदसे।

अग्निहोतस्यविषये वर्णनं वर्तते । ''उपत्वाग्ने हविष्मतीर्घताचीर्यन्तु। जुषस्व समिधो मम।''[18]

संहितायामस्यां व्याधिनाशाय स्वास्थ्यस्य कृते च कामनायाः शिक्षावाप्यते-

''ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्षमं च मेऽनामयच्च ये जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च ये सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।[19]

सामवेदे ऋगानित स्तोश्रिताणां गानाका शिक्षा वर्णिता-

वच ऋग्रस- ऋचः सामरसः।

साम्नः उद्‌गीयो रसः।[20]

सामसंहितायां सर्वेषां मत्राणां गेयात्मकता दृश्यते। माननीयादर्शस्वरूपा शिक्षा प्राप्यते-

भद्रं कर्णेभिः भृणुयाम

देवा भद्रं पवृयेयाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्‌गैस्तुष्ट्‌वासस्तूनूभिर्व्यसेमहि ।

देवहितं यदायुः ।[21]

अथर्वसंहितायामपि-रोग-स्त्रीवशीकरण-उच्चाटन-सम्मोहन-मारणेत्यादीनां प्रयोगादिशिक्षाणां वर्णनं प्राप्यते। वाण्याः अधिष्ठातृदेवं प्रति विहिता स्तुतिः मेधाजननसंस्काररूपेण द्रष्टुं प्राप्यते।

पुनरेहि वा चस्यते। देवेन मनसा सह ।

वसोष्यते निरयम मध्येवास्तु मपि श्रुतम् ।[22]

वरुणार्चने जलोदरादिरोगशन्त्यर्थ शान्ति प्राप्यते।

मुञ्चामि त्वां वैश्वानरादर्णवान् महतस्परि।[23]

सूर्योवास्यया विभिन्नानां रोगाणां कृते शिक्षाः प्राप्यन्ते ।

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे।।[24]

संहितायामस्यां भारतीयसंस्कृतेरुत्कृष्टतया शिक्षाऽवाप्यते ।

अतिथिसत्कारविषये आदर्शसङ्केतः दरीदृश्यते-

यद् वा अतिथिपतिरथीन् परिविष्य गृहानुयोवैत्यवभृथमेव तदुयावैति।।[25]

अथर्ववेदस्य षोडशे काण्डे मधुरं वक्तव्यं, मधुरं द्रष्टव्यं, मधुरं श्रोतव्यमिति मानवीयानामादर्शाना मवलोकनं प्राप्यते।

मधुमती स्थ मधुमती वाचमुदेयम् ।[26]

तथा च-

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ।।[27]

तत्र हि राष्ट्रप्रेम्णः उत्कृष्टतममवलोकनं भवति। वेदस्य पृथ्वीसूक्तस्य राष्ट्रियशिक्षया ओतप्रोतं दृश्यते।

असंबाधं यध्यतो मानवानां
यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
माना वीर्या ओषधीर्या बिभर्ति,
पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।।[28]

ऐतरेयब्राह्मणे सूर्यस्य सततशीला शिक्षा प्राप्यते।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्
सूर्यस्य पश्य श्रेयाणं यो न तन्द्रयते चरश्चैवेति ।।[29]

यजुर्वेदीयब्राह्मणे शिक्षा द्रष्ट्या वैशिष्ट्यं लोकमङ्गलकामनारूपेण दृश्यते ।

शिक्षादर्शरुपेणाप्यवलोक्ते। पञ्चमहायज्ञानां पालनार्थं शिक्षा प्राप्यते।

पञ्चैव महायज्ञाः तान्येतानि भूतयज्ञः, मनुष्ययज्ञः, पितृयज्ञः, देवयज्ञः, ब्रह्मयज्ञः इति।[30] तथा च आरण्यके शिक्षादृर्शनं श्रूयते। बाल्यकालात् शिक्षा जीवनपर्यन्तं अग्रेसरति । उपनयनोपरान्तं गुरुः शिष्यान् वैदिकशिक्षया सह शौचारणाय शिक्षाः प्राप्यन्ते। गुरोः दायित्वं परमं पवित्रमासीत्। संस्काराणां निर्मितिः तत्र वर्तते।

सः गुरुभिः क्रियां कृत्वा वेदमस्यै प्रयच्छति।
उपनीय ददद्वेवमाचार्य स उदाहृतः ।।[31]

बृहदारण्यकोपनिषदि सृष्टिकर्मणः शिक्षा दर्शनीया

सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यहहीदं सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्या हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ।[32]

तत्रैव तत्वज्ञानी याज्ञवल्क्येन नानाशिक्षाः प्रदत्ताः ।

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवत्यात्मानस्तु कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवतयात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति।[33] तत्रैव मोक्षाय रहस्योद्घाटनं करोति-

अणुः विततः पुराणो। मा स्पृष्टोऽनुवितो मयैव।

तेन धीराः अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वयं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः ।।[34]

ईशावास्योपनिषद् विश्वविश्रुता सर्वासुपनिषत्सु सर्वश्रेष्ठाभिवर्तते। शुक्लयजुर्वेदस्यैव चत्वारिंश्त्तमोऽध्यायः ईशावास्योपनिषद्नाम्नाभिहिता। अत्र कर्तव्यपालनं, लोभशून्यता आत्मज्ञानं-विद्या-अविद्यादि ज्ञानेनभिभूता, वर्तते। अत्रोपयोगिन्यः शिक्षाः प्राप्यन्ते, सन्तोषस्य कृते लोभं अकर्तुं शिक्षा प्राप्यते।

ईश्वावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।[35]

अत्र अस्यामुपनिषदि समातायाः कर्मण्यतायाः त्यागस्य परमलोकल्याणोपकारकस्य सम्पादनार्थं शिक्षयति।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि निजीविषेत् शतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[36]

मायामोहादिषु संलिप्ताः जनाः परिभ्रमन्ति। आत्मज्ञानिनः पुरुषाः सासारिकमोहादिषु भ्रमिताः न भवन्ति।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते।। [37]

विद्याविद्ययोः विषये किञ्चित्।

विद्यां चयाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।[38]

कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेदस्य कठसंहितातः गृहीताअस्मादेव कठोपनिषद् संजाता । इयं हि द्वयो अध्याययो विभक्ता। अत्र यमनाचिकेतयोः प्रासङ्गिकथोपवर्णिता। अत्र संवादे क्षणभङ्गुरता मरणो-तरजीवने लोभशून्यताआत्मज्ञानादयः शिक्षाः वर्तन्ते।

आशाप्रतीक्षे सङ्गतः सूनृतां चेष्टापूर्तेः पुत्रपशूनश्च सर्वान्। एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधासो यस्यानश्नाम् वतति ब्राह्मणो गृहे।[39]

कठोपनिषदः नायकः नचिकेतुः चरित्रे आदर्शपुत्रस्य गुणाः दृष्टिगताः भवन्ति। पित्रा स्वात्मानं यमराजाय प्रदातृविषयक वार्ता निशम्य सहर्षेण पितुराज्ञामङ्गीकृत्य यममुपगच्छति। यमेनप्रदतेषु त्रिषु वारेषु प्राथम्येन वरेण पितुः परितोषाय कामायते।

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्
वीतमन्युगौतमो माभि मृत्यो।
त्वत् प्रंसृष्टं मामिवदेत् प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।[40]

पुत्रेषु आदर्शस्वरूपं नचिकेतुः चरिते जिज्ञासु-दृढव्रती-दृढ निश्चय-लोभशून्यतादीनामादर्शाः दृश्यन्ते। यं हि पुत्र पौत्राश्वगजभूसम्पत्ति-धनाप्सरसां लोभः स्पर्शमपि कर्तु न शशाक।

सः ममं प्रति व्याहरति ''न वि तेन तर्पणीयो मनुष्यः''।।[41]

अस्मात् बुद्धिमान् जनः श्रेयसये वाञ्छति। ''श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते।।[42]

यम एव अग्निविद्यायाः कृते नचिकेता याचितः। सर्वहितकामनायै यमः आत्मज्ञानमुदानायाचितः।'' स त्वमग्निस्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्धानाय मह्यम्।।[43]

यस्मिन्नदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।[44]

मैत्राण्युपनिषदि दार्शनिकशिक्षामाधारीकृता तिष्ठति। अत्र संसारस्य क्षणभङ्गुरतां वर्णनम् मानवानां कृते जागृतिहेतवे प्रयत्नः सम्पादितः । जगतः नश्वरतायाः वर्णनं विहितम्-

सर्व चेदं क्षमिष्णु पश्यामो दंशमशकादयस्तृणवन्नपश्यत्योद्भूतप्रध्वंसिनः ।[45]

अस्थिमांस रक्तमलभूतान्यादिभि परिपूर्णः दुर्गन्धियुतं शरीरं तत्वरहितमस्ति अस्मात् कामजन्यरोगाः निरर्थकाः । भगवन्नस्थिकर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेषाश्रुद्रविते।[46]

अत्यविनाशिब्रह्मविद्यायाः विस्तृत विवेचन विहितम्।

''यो ह खलु वाचोपरिस्थः स एव शूद्रः पूतः शून्यः शान्तः
प्राणोऽनीशत्माऽनन्तोऽक्षय्यः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः।

स्वे महिम्नि तिष्ठत्यनेनेवं शरीरं यत्ने फलप्रतिष्ठापितम् ।।[47]

मायामोहभ्रमलोलुपता सुसंलिप्तो मानवः समाजस्य कृते उपनिषदियं ज्ञानशिष्टाचार कर्तव्यपालनादिवेदवर्णितानां शिक्षानां कृते आकर ग्रन्थः। यद्धि जनानां कृते शिक्षाप्रदानादर्शरूपेण तिष्ठति। अत्रैव प्रसिद्धा उक्तिः चरितार्था जायते मन एव मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्ष्योः वन्धाय विषयासक्तं मृक्तायै निर्विषयं स्मृतमिति।[48]

ब्रह्मसाक्षात्काराय मार्गो निर्दिष्टः।

श्वेताश्वरोपनिषदि षष्ठाध्यायेषु शिक्षा एव समावेशिता। अत्र काव्यस्वभाव कर्मफल व्यवस्था आकस्मिकघटना पञ्चमहाभूतादीनां प्रति जिज्ञासाभिव्यक्ता। कालः स्वभावो नियतिर्यहच्छा भूतानि योनिः पुरुषः इति चिन्त्या।[49]

यदात्मतत्वेन तु ब्रह्म तत्त्वं

दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।

अजं घुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं

ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाथैः ।।[50]

अस्यामुपनिषदि शिक्षायाः विशदं विवेचनं हि प्राप्यते । एवमेवाधोऽवलोकनीयम्-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वादत्यनश्नन्योऽभिचाकशीति।[51]

एवं समासतः कथितुं शक्यते यत् वैदिक वाङ्मये शिक्षायाः वर्णनं सर्वत्र प्राप्यते।

सन्दर्भ

1. अथर्ववेदः-11.5.8
2. श्रीमद्भगवद्गीता-18.73
3. तैत्तिरीयोपनिषद्-1.2
4. ऋग्वेदभाष्यभूमिका पृ0 52
5. अग्निपुराणम्- 336.13
6. ऋग्वेद प्रातिशाखयम्- 3.1
7. ऋग्वेदः- 10.90.9

8. ऋग्वेदः- 3.33.3
9. ऋग्वेदः- 10.119
10. ऋग्वेदः- 10.90
11. ऋग्वेदः- 10.121
12. ऋग्वेदः- 10.121.2
13. ऋग्वेदः- 10.108
14. ऋग्वेदः- 10.10
15. ऋग्वेदः- 3.33
16. ऋग्वेदः- 3.33.5
17. यजुर्वेदसंहिता- 3.2
18. यजुर्वेदसंहिता- 3.4
19. यजुर्वेदसंहिता- 18.6
20. छान्दोग्योपनिषद्- 1.1.2
21. सामवेदसंहिता- 21.1.2
22. सामवेदसंहिता- 1.1.2
23. अथर्ववेदसंहिता- 1.10.4
24. अथर्ववेदसंहिता- 1.12.4
25. अथर्ववेदसंहिता- 9.6.35
26. अथर्ववेदसंहिता- 16.2.2
27. अथर्ववेदसंहिता- 16.2.4
28. अथर्ववेदसंहिता- 12.1.2
29. ऐतरेयब्राह्मणम्- 33.3
30. शतपथब्राह्मणम्- 11.5.6.1
31. याज्ञवल्क्यस्मृतिः-1.34
32. गृहदाराण्यकोपनिषद्- 1.4.5
33. गृहदाराण्यकोपनिषद्- 2.4.5
34. गृहदाराण्यकोपनिषद्- 4.4.8

35. ईशवास्योपनिषद्-1
36. ईशवास्योपनिषद्-2
37. ईशवास्योपनिषद्-6
38. ईशवास्योपनिषद्- 11
39. कठोपनिषद्- 1.1.8
40. कठोपनिषद्- 1.1.10
41. कठोपनिषद्- 1.1.27
42. कठोपनिषद्-1.2.2
43. कठोपनिषद्-1.1.13
44. कठोपनिषद्-1.1.29
45. मैत्राण्युपनिषद् - 1.4
46. मैत्राण्युपनिषद् -1.2
47. मैत्राण्युपनिषद् -2.4
48. मैत्राण्युपनिषद् -3.4
49. श्वेताश्वतरोपनिषद्- 1.2
50. श्वेताश्वतरोपनिषद्-2.15
51. श्वेताश्वतरोपनिषद्-4.6

सर्वशास्त्रविशारद आचार्यमम्मटः

डॉ. भुवनेश्वरी भारद्वाज

व्याकरणशास्त्रस्याध्ययनं भाषा सम्बन्धिनीं व्युत्पत्तिम् अध्येतरि आदधाति। तद्वत् काव्य-सम्बन्धिनीं व्युत्पत्तिनैपुणीं किल समादधाति अलंकारशास्त्रस्याध्ययनं तदनुशीलनपरायणे सहृदयाध्येतरि। पौनरुक्त्यसाधारण्येऽपि क्वचिद् दोषावहत्वं क्वचिन्नेति दोषज्ञपर्यायविद्वत्त्वम् नालङ्कारशास्त्रानुशीलनं विना सम्भवतीति नाविदितं बुधानाम्।

संस्कृतवाङ्मयाधीतिनामेतत् सुविदितं यद् व्याकरणादिवद् अलङ्कारशास्त्रस्यापि अनादितैव समास्थीयते। अथापि साम्प्रतम् अलंकारशास्त्रस्य यद् विशालं वाङ्मयं विजृम्भते तस्य बीजम् अग्निपुराणे इदम्प्रथमतया समुपलभ्यते। तद्यथा–काव्यलक्षणमुक्तम्–

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम्॥'[1]

सप्रभेदं विभावलक्षणं यथा–

रत्यादिभाववर्गोऽयं यमाजीव्योपजायते।
आलम्बनविभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा॥
विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।
विभावोनाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः॥

एवं रीतेः चतुर्धाप्रपञ्चनम् अन्यच्च अलङ्कारशास्त्रप्रतिपाद्यम् बीजरूपतया तत्र सुस्पष्टमुपलभ्यते। शब्दार्थचित्रासकङ्कराणामपि प्रतिपादनं सुस्पष्टतया अग्निपुराणे समुपलभ्यते। तद्यथा

स्यादावृत्तिरनुप्राप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः। इति[2]
उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः। इति च[3]

मंहनीये किल अलंकारशास्त्रे विवेचनीया विषया भवन्ति काव्यस्य दोषाः गुणाः अलंकाराः रसादयश्च तथापि शास्त्रस्यास्यनाम प्रथते अलंकारशास्त्रमिति। तत्कस्यहेतो इति जिज्ञासा विदुषां पुरस्तात् सन्तिष्ठते। तस्याः समाधानाय विद्वांसो यतन्ते। विचार्यतामस्माभिरपि। काव्यस्य किमपि तादृशं सुषमाशतमण्डितं सौन्दर्यं भवति यत्र दोषाः अपमृज्यन्ते, गुणाः आधीयन्ते, अलंकाराः संवलनीक्रियन्ते अथ विविधानां नवानामभिनवानां रसानां कश्चन् प्रकटनात्मा आत्मसाद्भावो विजृम्भते। तदेतत् लोकोत्तरं सौन्दर्यं सहृदयजनमनांसि समाकृष्य सहृदयान् सद्य एव चित्रशक्तिगणभूमिविभागभागिनि

भगवति चन्द्रमौलौ सद्यः परनिर्वृत्यासादनेन यत् परविकारमयान् चिदानन्दनिर्भरान् विदधाति तत्र भावसाधनः चमत्कृत्यपरपर्यायः अलंकार एव हेतुर्नात्वन्यः। यदेतल्लोकोत्तराह्लादजननं सैव चमत्कृति रसावेव प्रोच्यतेऽलङ्कारोयश्चायं भावसाधनः नतु करणसाधनः तमेवाश्रित्य संज्ञेयं पप्रथे-अलङ्कारशास्त्रम्। सोऽयं निष्कर्षः प्राप्यते निपुणं क्रियमाणे सद्विचारविमर्शे। अत्रचानुगुण्यं किमपि संबिभर्ति-अलंकारशास्त्राचार्यवरवामनसूत्रसन्दर्भः तद्विवरणवचश्च-'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्, सौन्दर्यमलङ्कारः, अलंकृतिरलंकारः', इति।

'स खलु अलंकारो दोषहानात् गुणालंकारयोश्दानाच्च सम्पाद्यः कवेः इति च। शास्त्रान्तरे नाम विषये चेत् क्रियते विचारस्तदा किमपिनाम केन कारणेन प्रथितं भवतीति स्फुटं प्रतीयते। अत्र भवान् महर्षिगौतमः प्रमाणप्रमेयादीनां षोडशपदार्थानां निरूपणं सप्रयोजनं सुविशदं विदधाति। अथापि तदीयं शास्त्रं न्यायदर्शन (शास्त्र) नाम्ना यद् विश्रूयते तत्र हेतुः प्रमाणस्य व एकदेशभूतेन अनुमानेन न्यायशब्दवाच्येन पञ्चावयवाक्यात्मना प्रत्यक्षानुमानाभ्यः ईक्षितस्य अर्थस्य सत्यां संशयावस्थायां विपरीतावस्थायां वा अन्वीक्षायां क्रियमाणायां संशयस्यभ्रान्तिर्वा विदलनमेव अनेन प्रकारेण प्रमेयस्य अर्थस्य यथार्थ ज्ञानं प्रमात्मकं दाढ्र्यमुपैति। तत एव अन्वीक्षया प्रवर्तमानं शास्त्रम् आन्वीक्षिकीविद्येति गीयते चेत् न्यायशास्त्रनाम्नाऽपि विश्रूयते।

दृष्टान्ते संज्ञाकरणे प्राधान्यमेव हेतुरिति सुप्रतीतं भवति। प्रथते चैनदेवाधृत्य सूक्तिरियम्-

प्रदीपः सर्वविधानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥ इति।[5]

तदेवं दार्ष्टान्तिके अलंकारस्य चमत्कृत्यपरपर्यायस्य प्राधान्यमेव हेतुरलंकारशास्त्रमिति संज्ञाकरणे-इत्येत् सुप्रतीतमाभाति अतएव प्रकाशकृद्भिःअलंकारस्य काव्यव्यवहृतिप्रयोजकत्वं व्यवस्थापयता 'काव्यवृत्तेस्तदाश्रयादिति'[6] ग्रन्थोक्त्या ध्वनिकारसूत्रोक्तिर्विशदीकृता।

अथ व्याख्याकृद्भिः उद्योतकृद्भिः हस्तामलकवत् प्रबोधमाविष्कर्तुं विवृतम्-काव्यवृत्तेरिति प्रतीकमादाय- 'काव्यपदवृत्तेरित्यर्थः। सालंकारत्वस्य काव्यलक्षणघटकत्वादिति भावः। यद्वा कायवृते काव्यनिष्पत्तेरित्यर्थः। अलंकारकृतचारुत्वेनैव शब्दार्थयोः काव्यत्वनिर्वाहादिति भावः।' इति।[7]

तत एव तु गुणनैरपेक्ष्येणापि अलंकारमहिम्नैव काव्यत्वव्यवहारः समुदाहारि प्रकाशकृता। तद्यथा-

'स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनी।
अस्यारदच्छदरसो ण्यक्करोतितरां सुधाम्॥-इत्यादौ विशेषोक्ति-व्यतिरेकौ गुणनिरपेक्षौ काव्यव्यवहारस्य प्रयोजकौ इति।[8]

भामहोक्तेरुपपादनमपि अलंकारमाहात्म्यमाविष्कुरुते- 'अविरलकमलविकासः' इत्यत्र काव्यरूपतां कोमलानुप्रासमहिम्नैव समाम्नासिषुर्न पुनर्हेत्वलंकारकल्पनया'-इति।[9]

अद्य सम्प्राप्यमाणम् अलङ्कारशास्त्रवाङ्मयं यैः संवर्धितं तत्र प्रमुखाः कीर्त्यन्ते- भरतदण्डि-भामह-भट्टोद्भट-रुद्रट-वामन-वक्रोक्तिजीवितकृद्-भट्टनायकानन्दवर्धनाभिनवगुप्त-भट्टलोल्लट-श्रीशङ्कुक-मम्मटविश्वनाथ-जगन्नाथ-भोजराज-अल्लटसूरि-रेवाप्रसादद्विवेदिप्रभृतयः अलंकारशास्त्रस्याचार्याः। तत्र काव्यप्रकाशकृत तत्रभवान् मम्मटः सर्वान् स्वेतराचार्यान् अतिशेते।

शिवागमसिद्धान्तेष्वास्थावतः श्रीमम्मटस्य पितृनाम जैयट इति विश्रूयते। काश्मीरनिवासिनः अस्य आध्यात्मिकी दीक्षा षट्त्रिंशत्तत्त्वदीपिता आसीत्। एनयादीक्षया क्षपितसकलकल्मषमलपटलः साक्षात्कृतसत्स्वरूपचिदानन्दपरतत्त्वः राजानककुलतिलको देशिकवरो वाराणसीमधिवसन्नधीतसकलशास्त्रो महाबुधो बभूव। अस्य द्वावनुजौ तत्सदृशप्रतिभान्वितौ कैयटोवटौ स्मृतौ यौ वाग्देवतावतारमहिमानमतिशाययतः स्म। कैयटेन व्याकरणमहाभाष्यस्य त्रिमुनिप्रवरपतञ्जलिविरचितस्य आह्निकसंविभक्तस्य अन्वर्थ-प्रदीपपटीका व्यरचि चेद् अपरेणावरेण उवटापरनाम्ना औवटेन विदुषा वेदचतुष्टयभाष्यमभाषि। यद्यपि सन्त्यत्र ऐतिह्वविदां मतभेदाः तथापि समीक्षाविधया तेषां समुपशमो नाशक्यक्रियः।

शब्दव्यापारविचारग्रन्थप्रणेतुः काव्यप्रकाशकर्तुः श्रीमदाचार्यमम्मटस्य विषये शरीरसम्बद्धपरिचयप्राप्तिः निदर्शनाख्यटीकाकृतः सुधासागराभिधटीकाकृतश्च तद्विलक्षणटीकाकृतश्च माणिक्यचन्द्रात् सरस्वतीतीर्थात् देवनाथतर्कपञ्चाननाच्च सुलभा भवति।

अवगतसकलशास्त्रसतत्त्वस्यास्य प्रौढ़वैयाकरणत्वं स्वशब्दात् पश्चाद्वर्तिबुधजनशब्दावलीतश्च विज्ञायते। तद्यथा बुधवैयाकरणैरिति[10] वृत्तिग्रन्थः मम्मटाचार्यस्य स्वशब्दः। संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेववेति सूत्रवृत्तिग्रन्थः-वैयाकरणसम्मतो जात्यादिरिति पक्षः स्वाभिमतत्वात् प्रथमत एवोपन्यस्तः।[11] इति

नैकैः प्रमाणैः अलंकारशास्त्रस्य व्याकरणशास्त्रपुच्छरूपता सुप्रतीता भवति। मम्मट-कैयट-नागेशभट्ट-भट्टि-प्रभृतीनां बुधानां वचोभ्यः प्रवाद एष प्रसृतो भवति-

'इदमलंकारशास्त्रं व्याकरणशास्त्रस्यैव परिशिष्टो भागः।[12] इति

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्। हस्तामर्श इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते।।[13] इति। भट्टोक्तिः शब्दलक्षणमेव चक्षुर्येषां तेषां दीपतुल्यः तद्रचितकाव्यप्रबन्धा इत्येवमर्थं प्रमाणयन्ती अलंकारशास्त्रस्य व्याकरणशास्त्रपरिशिष्टताम् आवेदयति। तत्रत्यंचावतरणवाक्यं जयमङ्गलकृतम् अनुशील्यताम्य एव व्याकरणमधीतवान् तस्यैवात्र (काव्ये) आदरोयुक्त इति दर्शयन्नाह दीपतुल्य इत्यादि' इति[14]

न्यायशास्त्रे स्वशब्देन निराकृता मीमांसाशास्त्रे नितान्तम् अश्रूयमाणा च व्यञ्जना वैयाकरणैः स्वीकृता सर्वथा समर्थ्यते तत एवावगम्यते यदलङ्कारशास्त्रस्य व्याकरणशास्त्रसमसिद्धान्तिता चकास्तीति। अतएव स्फुटमुक्तं शब्दस्यत्रैविध्यम् अर्थस्य त्रैविध्यम् वृत्तेश्च त्रैविध्यं सूत्रतद्वृत्तौ च बुधवरेण आचार्यमम्मटेन। अंशत्रयोपेते काव्यप्रकाशे कारिका सूत्रापरपर्याया, वृत्तिः, उदाहरणं चेति ये त्रयो भागाः

तेषु द्वयो: कारिकावृत्त्यो: कर्ता आचार्यमम्मट: अन्यदीयान्येव उदाहरणानि उद्धरतिस्मेति व्याख्यातृणां वचोभि: साक्षात् परम्परया वा सुस्पष्टं परिज्ञायते।

यथा भगवत: पाणिने: सूत्राणां काशिकावृत्तिरित्यभिधीयते तथैव मम्मटोक्ता वृत्ति: कारिकाया: सूत्रत्वमवगमयति। न हि सूत्र व्याख्यानरूपफक्किकातो भिन्नस्य वृत्तिग्रन्थरूपता केनचिदिष्य वृत्तिग्रन्थस्य सूत्रव्याख्यानरूपक्किकारूपता भवतीति काव्यांलकारसूत्राणां स्वार्था वृत्तिर्विधीयते इति वामनोक्तिरपि एनमेवार्थमुपोद्वलयति।

सोऽयमलंकारशास्त्राचार्येष्वग्रणी: वाग्देवतावतार: श्रीमान् मम्मटाचार्य: वाग्देवतां कविभारतीं सर्वोत्कृष्टतया समाकलयन् तदीया: काश्चन विशेषता: विशिष्य वर्णयन् तामेव प्रति स्वाम् प्रह्वीभावतामर्पयन् कस्य वा भारतीसमुपाकस्य न श्लाघ्य:। अनुशीलयाम् तावद् वयं काव्यप्रकाशग्रन्थारम्भमङ्गलम्-

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।

वादटिप्पण्य:

1. अग्निपुराणम्-अ० 337
2. तदेव- 339
3. अग्निपुराणम्-अ० 340
4. तदेव-343
5. तदेव-344
6. कौटिलीयार्थशास्त्रवचनम्
7. काव्यप्रकाश: -5
8. तदेव
9. तदेव-उल्लास:-8
10. तदेव-उल्लास:-10
11. प्रथमोल्लास: काव्यप्रकाश: पृ. 19
12. काव्यप्रकाश: द्वितीय उल्लास:
13. काव्यप्रकाशस्य प्रस्तावना-झलकीकरटीकाकृत:- पृ. 10
14. भट्टिकाव्यम् सर्ग-22
15. तदेव

साहित्यशास्त्रे रससूत्रविमर्शः

डॉ. सन्दीपकुमारमिश्रः
सहायकाचार्यः, संस्कृतविभागः
किसान पी.जी. कालेज, बहराइच

संस्कृतसाहित्यप्रतिपादितस्य रसस्य प्राचीनत्वं तन्महत्त्वं च सर्वविदितम् एवास्ति। तैत्तिरीयोपनिषदि रस-माहात्म्यप्रतिपादनपुरःसरमुक्तं-'रसो वै सः'। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।[1] इत्थं हि 'रसो वै ब्रह्म' इति प्रतिपादनपुरःसरं प्रोक्तम् ऋषिभिः-यद् यं प्राप्य मानवः आनन्दमनुभवति स रसः एवास्ति। अग्निपुराणेऽपि रस-माहात्म्यांगीकारपूर्वकं रसो हि काव्यस्य प्राणतत्त्वं स्वीकृतम्। यथा-"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"[2]। एतदतिरिक्तम् आदिकविर्वाल्मीकिः करुणरसप्रेरणया करुणरसोद्रेकेण च प्रेरितः सन्नेव स्वकीयादिकाव्यस्य रचनामकरोत्। वाल्मीकेः करुणरसमयं पद्यं लौकिकसाहित्यस्य प्रथमच्छन्दः स्वीक्रियते। यथा-

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

ध्वनिसिद्धान्तप्रवर्तकः आनन्दवर्द्धनः वाल्मीकेः इदमेव पद्यम् आधृत्यैव ध्वनेर्मूलतत्त्वं रसमन्यत्। सम्प्रत्येषा जिज्ञासा प्रादुर्भवति यत् कः खलु रसस्य प्रथमप्रवर्तकः? अस्याः जिज्ञासायाः समाधानाय राजशेखरः 'नन्दिकेश्वरं' रसप्रवर्तकमन्यत्- 'रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः'[3]। किन्तु नन्दिकेश्वरस्य रसप्रतिपादको ग्रन्थः अप्राप्योऽस्ति। अतः नन्दिकेश्वरो नहि रसप्रवर्तको भवितुमर्हति। अस्य स्वरूपं सर्वप्रथमं नाट्यशास्त्रे प्राप्यते। अतो रससिद्धान्तप्रतिपादनाय भरतमुनिर्नाट्यशास्त्रे रससूत्ररचनामकरोत्। यद्यपि नाट्यशास्त्रात् पूर्वं रसाविर्भावः सम्पन्नमासीत्। अस्य सिद्धान्तस्य सम्बन्धः वासुकिनारदादिभिरप्यासीत्, ईदृशाः संकेताः प्राप्यन्ते, तथापि वासुकिनारदादीनां कोऽपि ग्रन्थो न प्राप्यते, अतः प्रमाणस्वरूपं किमपि न वक्तुं शक्यते । अतो भरतमुनिरेव रसप्रवर्तकः इति कथ्यते। नाट्याचार्यमतेन आस्वाद्यो हि रसः कथ्यते । यथाऽनेकविध-सुसंस्कृत व्यंजनादिभोज्यपदार्थाशनेन आस्वादनादानन्दानुभूतिर्भवति तथैव सहृदयाः अभिनयादिनैपुण्येन व्यज्यमानरसानुभवमास्वादं वा प्राप्नुवन्ति। अतो रससम्बन्धे भरतमुनेर्मतिरस्ति-विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद् रसनिष्पत्तिर्भवति । एष एव भावः भरतमुनेः प्रख्यात रससूत्रेण प्रकाश्यते-

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"[4]।

काव्यप्रकाशकारो रसस्वरूपं विशदयँल्लिखति-

''कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानिचेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैविर्भावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः''[5]॥

आसु कारिकास्वपि विभावानुभावव्यभिचारिभावस्थायिभावैश्च रसनिष्पत्तिर्वर्णिता। एतदपि चात्र वर्णितं यद् रत्याद्युपत्तेर्यानि कारणानि तानि विभावादिपदैः ,कार्याश्चानुभावशब्दैः व्यभिचारिभावाश्च सहकारिशब्दैः कथिताः। रसानुभूतिवशाद् विभावाः द्विधा कथिताः- आलम्बनविभावः उद्दीपनविभावश्च। ययालम्ब्य रसनिष्पत्तिर्भवति, स आलम्बनविभावः, अपरश्च उद्दीपनविभावः। यथा राममवलोक्य सीतायाः मनसि, सीतां चावलोक्य रामस्य मनसि रतिराविर्भवति, तौ चावलोक्य सामाजिकहृदये रसाभिव्यक्तिर्भवति, अतः सीतारामौ शृंगाररसस्य आलम्बनविभावौ स्तः। चन्द्रिकोद्यानादिना रतेरुद्दीपनं भवति, अतस्तत् शृंगाररसस्य उद्दीपनविभाव इति कथ्यते। प्रत्येकरसस्य आलम्बनोद्दीपनविभावाः पृथक् पृथग्भवति। अनुभावलक्षणं निर्धारयन् भरतमुनिः कथयति-

वागङ्गभिनेयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः॥[6]

अर्थात् वाचिकाभिनयेन आंगिकाभिनयेन रत्यादिस्थायिभावस्य आन्तराभिव्यक्तिरूपमर्थं प्रत्यक्षमनुभवति, स एवानुभाव इति कथ्यते। इत्थमेव भरतमुनिर्व्यभिचाारिभावस्यापि लक्षणं कुर्वाण उपदिशति-उद्बुद्ध-स्थायिभावानां पोषणे उपचये च ये तत्सहकारिणो भवन्ति ते व्यभिचारिभावाः कथ्यन्ते।

विभावानुभाव - व्यभिचारिभावानां संयोगाद् रसनिष्पत्तिर्भवति। रससूत्रप्रयुक्तविभावानुभावव्यभिचारिभावशब्दानां व्याख्यानदृष्ट्या आचार्येषु कोऽपि मतभेदोनास्ति। परन्तु रससूत्रप्रयुक्त 'संयोगनिष्पत्ति' शब्दयोर्व्याख्यां विविधाः आचार्याः विभिन्नप्रकारेणाकुर्वन्। एष्वाचार्येषु भट्टलोल्लट-शंकुक-भट्टनायकाभिनवगुप्ता इमे चत्वारः आचार्याः प्रमुखाः सन्ति।

यतो भरतमुनिना स्वयं सूत्रस्यास्य न काचिद् विस्तृता व्याख्या कृता, अतः 'विभानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद' इति सूत्रांशस्य, रसनिष्पत्तेश्च कोऽर्थ इति विषये परवर्तिविद्वदाचार्याः पृथक् पृथग् विविधा व्याख्याः प्रास्तुवन्-

लोल्लटकृतं रससूत्रविवेचनम्- भामह-दण्ड्युद्भटस्त्रयो हि विद्वांसः काव्यगतव्यक्तिमेवरसाश्रयममन्यत। एषां मतिरासीद् यद् यदि रतिक्रोधादयः स्थायिभावाः स्पष्टतया दृश्यन्ते, तदा ते एव रसपदवीं प्राप्नुवन्ति। इमामेव मतिमाश्रित्य भट्टलोल्लटो रससूत्रविवेचनामकरोत्। एतन्मतेन रससूत्रप्रयुक्त 'संयोग' पदस्यार्थः -'स्थायिभावस्य विभावादिभिः संयोगः'। यतः स्थायिभावस्य विभावादिभिः संयोगे सत्येव

रसनिष्पत्तिर्भवति। एवामयं संयोगः स्थायी, यतो विभावाः स्थायि-चित्तवृत्त्युत्पत्तौ हेतवो भवन्ति। रससूत्रोक्ता अनुभावाः रसजन्यानुभावाः न सन्ति। यतोऽनुभावानां रसजत्वमत्या इमे रसहेतवो न भवेयुः, अतः इमे भावानामेवानुभावा इति मन्तव्यम्। व्यभिचारिभावाः अपि चित्तवृत्तयः, स्थायिभावाश्चापि चित्तवृत्तय एव। इमे उभे चित्तवृत्ती युगपदेव चित्ते न स्थातुमर्हति। अतोऽत्र स्थायिभावस्य वासनात्मकं रूपमेवेष्टमिति मन्तव्यम्। विभावोत्पन्नाः स्थायिभावाः अनुभावैरनुभूयन्ते व्यभिचारिभावैश्च पुष्यन्ति। इत्थं विभावादिभिरूपचितः स्थायिभाव एव रसोऽस्ति। उपचयाभावे रसो न स्यात्, केवलं भावमात्रमेवास्य स्थितिर्भवति। अयमुपचीयमाणः स्थायिभावो वस्तुतः मुख्यवृत्त्या रामादिगतः(नाट्यगतव्यक्तिगतः) भवति, अत एव रसोऽपि वस्तुतः मुख्यवृत्त्या रामादिगत एव भवति किन्तु नट रामादिरूपस्यानुसन्धानं करोति। अनेनानुसन्धान-सामर्थ्येनैव रसोऽप्यस्माभिर्नटः एवास्वाद्यते। भरतमुनिर्नाट्यरससंज्ञया रसं दिशति, अस्य कारणं केवलं एतदेव यद् रामादिभिरस्य रसस्यप्रयोगः नाट्ये प्रदर्शितः। इत्थं लोल्लटमतेन स्थायिभाव-रसयोर्मूलतो न कोऽपि भेदः। भेदस्तयोः केवलमुपचित्यनुपचित्योः, अन्यथा द्वयोरप्येकत्वमेवास्ति । अपरतश्च रसो व्यक्तिनिष्ठो भवति,एषा रामादेरेव वृत्तिर्नत्वन्यस्य कस्यापि । वेषरूपादिभिर्नटे रामाद्यभिनिवेशो जन्यते। नटो रामाद्यभिनिवेशपूर्वकं रंगमंचमुपतिष्ठति, दर्शकाश्चापि तं राममेव मन्यते। नटोऽप्येतेनैव रसमास्वदते। इत्थमस्मिन् मते 'संयोग' पदस्यार्थः उत्पाद्योत्पादकभावसम्बन्धस्तथा च 'निष्पत्तिः' पदस्यार्थः उत्पत्तिरिति अस्ति।

श्रीशंकुककृतं रससूत्रविवेचनम्- न्यायसिद्धान्तानुयायी श्रीशंकुकः भट्टलोल्लटमतं खण्डयन् स्वकीयमतमुपस्थापयति। तन्मत्या रसः स्थायी नास्ति, अपितु स्थायित्वस्यानुकरणमस्ति। अस्यानुकरणरूपतां प्रदर्शयन् स दिशति-

''तस्मात् हेतुभिर्विभावाख्यैः कार्यैरनुभावात्मभिः सहचारिरूपैश्च व्यभिचारिभिः प्रयत्नार्जिततया कृत्रिमैरपि तथामभिमन्यमानैः अनुकर्तृस्थत्वेन लिंगबलतः प्रतीयमानः स्थायीभावो मुख्यरामादिगतस्थाय्यनुकरणरूपः। अनुकरणरूपत्वादेव च नामान्तरेण व्यपदिष्टो रसः।''[7]

अर्थात् विभावादिसंज्ञयाऽभिज्ञेयकारणैरनुभावरूपकार्यैः सहचारि-व्यभिचारिभिर्लिंगबलेनानुकर्तरि नटे प्रतीयमाणः स्थायिभावो मुख्य-रामादिगतस्थायिभावस्यानुकृत्यात्मको भवति। इमे कार्य-कारण-सहचारिणः नटैः सप्रयत्नं साधिताः, अतएव कृत्रिमा भवन्ति। किन्त्विमे सामाजिकैः कृत्रिमरूपेण नानुभूयन्ते। एवं नटे प्रतीयमानः स्थायिभावः अनुकरणात्मको भवति, अतः स स्थायिभावनाम्ना नहि, अपितु रस इत्यपरनाम्नाऽभिज्ञायते।

अस्यायमर्थो यन्नाटके ये विभावादयो दृश्यन्ते, ते कृत्रिमाः सन्तोऽपि नटैः सयत्नं कौशलबलेन कृताभिनयेन कृत्रिमा न प्रतीयन्ते, अपित्वेषां विभावादिरूप-कारण-कार्य सहचारिणां साहाय्येन नटे एव स्थायिभावोऽनुमीयते। इत्थं नटेऽनुमितः स्थायिभावो मूलरामादेः स्थायिभावस्य अनुकरणमेव भवति, अत एवायं रसनाम्नाऽभिज्ञायते न तु स्थायिभावरूपेण। शंकुकमतानुसारं विभावास्तु काव्यबलेन

प्रत्यक्षीभवति, अनुभावाः व्यभिचारिभावाश्च नट कौशलेन प्रत्यक्षीभवन्ति, तथा च कृत्रिमव्यभिचारिभावानुभावाः नटस्य सामर्थ्येन प्रकाश्यन्ते। परन्तु स्थायिनस्तु काव्यबलेनापि न साक्षात्करणीयाः, अपितु ते तु केवलमनुमानेनैव ज्ञेया भवन्ति। यथा- रतिशोकादयः शब्दाः काव्ये प्रयुक्ता अपि केवलं तद्भावाभिधानमेव कुर्वन्ति। तैः शब्दैस्तद्भावानामाभिनयो न भवति।

इत्थं खलु शंकुकमतस्य समीक्षणे कृते इदं स्पष्टं ज्ञातुं शक्यते -''शंकुको नटे रसमनुमेयं मन्यते। तन्मतेनानुमितरसस्य प्रतीतेराधारः सामाजिको न भवितुमर्हति, नटो रामो नास्तीति, ज्ञानपूर्वकमपि स रामरूपेण स्वीक्रियते। अत्र नटकृतमनुकार्यस्य स्थायि-कुशलनुकरणमस्ति। अनेनानुकरणेन नटेऽनुकार्यस्य स्थायिभावोऽनुमीयते। अयमनुमानोऽन्यानुमानापेक्षया विलक्षणो भवति। अत एवायमनुमानः सामाजिकानां चर्वणाया विषयो भवति। इत्थमस्मिन् मते अनुकरणानुमानाभ्यां रसनिष्पत्तिर्भवति। अत एव अनुकृत्यनुमितिपदरूपेणाप्येतज्ज्ञायते। अस्मिन् मते संयोगस्यार्थः 'गम्य-गमकसम्बन्धः', निष्पत्तिपदस्यार्थः अनुमितिरिति कृतः।

भट्टनायककृतं रससूत्र विवेचनम्-

भट्टनायकः ध्वनितत्त्वाद् असहमतासीत्। 'रसो ध्वन्यते'[8] इति आनन्दवर्द्धनमतखण्डनायैव स हृदयदर्पणनामकग्रन्थस्य रचनामकरोत्। भट्टनायकमत्या रसो नोत्पद्यते, यथाऽऽह लोल्लटः, न च प्रतीयते वाऽनुमीयते, यथाऽऽह शंकुकः, न च रसोऽभिव्यजते वा ध्वन्यते, यथाऽऽह आनन्दवर्द्धनः। एतद्विपरीतं भावकत्वव्यापारेण रसः भावितो भवति, भोजकत्वव्यापारेण च रसिकः रसमास्वदते।

भट्टनायकमतेन काव्यं शास्त्रं चोभयमपि शब्दार्थरूपं सदपि द्वयोरपि शब्दार्थयोः कार्यं भिन्नं भवति। काव्ये वाच्यार्थरसवाचकानामेषां त्रयाणां परस्परं सम्बन्धो भवति, एतदनुसारं च काव्ये प्रयुक्त शब्दस्य शक्तेस्त्रयोंऽशाः भवन्ति। वाच्यार्थदृष्ट्या शब्देऽभिधाव्यापारः, रसदृष्ट्या शब्दे भावकत्व व्यापारस्तथा च सहृदयदृष्ट्या शब्दे भोजकत्वव्यापारो भवति। काव्यगतशब्देऽभिधाशक्तौ भावना भोगीकरणं चेति द्वयोः शक्त्योः सम्मिश्रणं भवति। इत्थं काव्यनाटकयोरुभयोर्द्वयोः शब्देऽभिधाशक्त्या सह भावकत्व-भोजकत्वनामक शक्तिद्वयमपरमपि व्यापृतं भवति। भावनया भावितोऽर्थाद् आस्वादार्हो रसोऽनुभवस्मृतिभिन्नेन भोगाख्येन तृतीयव्यापारेणोपभुज्यते। रसनिष्पत्तिसम्बन्धितचर्चायां भट्टनायकमतस्य विश्लेषणे कृते स्पष्टं ज्ञायते तथ्य-त्रयम् प्रथमं रसाधिष्ठानं भावकस्य चित्तमस्ति। अतोऽस्यां क्रियायां भावकस्याप्यन्तरंगरूपेण प्रवेशो जातः। द्वितीयतः विभावादेः साधारणीकरणं विना रसानुभूतिर्नैव सम्भवति। तृतीयमिदं तथ्यं यत् रसानुभूतिदशा सत्वोद्रेकात् प्रकाशानन्दमयी अस्ति, स चानन्दः ब्रह्मानन्दसदृशः अस्ति । अत्र 'संयोग' पदस्यार्थः भोज्य-भोजक भावसम्बन्धः, निष्पत्तेश्चार्थः भुक्तिरित्यस्ति।

अभिनवगुप्तकृतं रससूत्र विवेचनम्-

''काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः''[9] इति भरतकृतसूत्रेणैवाभिनवगुप्तः स्वीयं विवेचनं प्रारभत। काव्यगतपदार्थाः वाक्यार्थाश्च अन्ततः रस एव पर्यवस्यन्ति। इत्थं रसः काव्यस्यासाधारणः

प्रधानश्च धर्मोऽस्ति। अतो रस एव काव्यार्थः। काव्यार्थे अर्थशब्दो नाभिधेय वाचकः, अपितु 'प्राधान्य' मित्यस्याभिप्रेतार्थः। रसः स्वशब्देन अवाच्यो भवति, अतः स काव्यस्य नाभिधेयो भवितुमर्हति। काव्ये रसप्राधान्यं सापेक्षं भवति, अत एव रसः काव्यार्थ इति कथ्यते। स्थायिभावाः व्यभिचारिभावाश्च रसनिष्पादकभावाः सन्ति।

स्थायि-व्यभिचारिभावसमूहैरेवैकोऽलौकिकोऽर्थः सम्पद्यते। स एवास्वाद्यो भवति। अभिनवगुप्तमत्यनुसारं सहृदय-लौकिक-व्यवहारे आदौ स्थायि-व्यभिचारिभावाः ज्ञायन्ते, ततश्च काव्यवाचनकाले वा नाट्यावलोकनकाले साधारण्यभूमिकया एषां रसास्वादः कर्तुमर्हो भवति। एवं प्रकारेणाभिनवगुप्तस्य समग्रविवेचनं सामाजिक-रसानुभूतौ केन्द्रितमस्ति। अभिनवगुप्तमतेन सहृदय-सामाजिकगतः स्थायिभाव एव रसानुभूतेर्निमित्तं भवति । वासनारूपेण वा संस्काररूपेण इत्यादिः स्थायिभावः सामाजिकस्य आत्मनि व्याप्तः, यः काव्यस्य सीताद्यालम्बनविभावैः उद्यानाद्युद्दीपनविभावैः, कटाक्षाद्यनुभावैस्तथा चापल्यादि व्यभिचारिभावैः सह व्यष्टिशः समष्टिशश्च संयोगाख्यया काव्यस्य तृतीयया शब्दशक्त्या व्यंजनया उद्‌बुध्य शृगाराद्यलौकिकं चामत्कारिकं यत् तत्त्वं, स 'रस' इति कथ्यते। रसस्य केवलमिदमेव रूपमास्वादार्हमस्ति। यावद् विभावादयो विद्यमाना भवन्ति तावदेवास्यानुभूतिर्भवति। विभावादीनामेषा प्रतीतिः पृथक् पृथग् रूपेण नहि, अपितु अखण्डात्मकरूपेण भवति। यथा कृष्णमरिचैलाकेसरादिपदार्थैर्निर्मितपानके सकलपदार्थविलक्षणः एकोऽन्य एव स्वादो भवति, तथैव विभावादिभिः विलक्षणस्य कस्यचिद् अलौकिकरसस्य आस्वादनं भवति। अभिनवगुप्तमतस्य विवेचने कृते इदं सुस्पष्टं ज्ञायते यद् रसो न तु स्थायिभावा, न वा स्थायिनः उपचयोऽस्ति, न सः स्थायिनः अनुमानोऽस्ति, नैव च साधारणीभूतस्थायिनः आत्मगतः उपयोग एवास्ति। स तु निर्विघ्नरसात्मकप्रतीतेर्विषयात्मकभावोऽस्ति। एषा निर्विघ्नरसनात्मकप्रतीतिरेव 'चर्व्यमाणता' इति कथ्यते, स एव च एकमात्रं रसस्य प्राणभूतोऽस्ति इत्थमभिनवगुप्तः 'निष्पत्ति' शब्दस्यार्थः ''अभिव्यक्ति'' रिति मन्यते। अत एवास्य सिद्धान्तोऽभिव्यक्तिवादनाम्ना हि ज्ञायते।

सन्दर्भग्रन्थाः

1 तै. उ., वल्ली-3 अनुवाक्-7
2 अग्निपुराणः, अध्यायः 337 कारिका 33
3 काव्यमीमांसा प्रथमोऽध्यायः पृ. 2
4 ना.शा. षष्ठ-अध्यायः
5 का.प्र. 4/27-28
6 ना.शा. 7/5
7 अभिनव का रस विचार पृ. 14
8 भारतीय साहित्यशास्त्र पृ. 289
9 तदेव पृ. 298

सौन्दरनन्दकाव्ये महायानमतमीमांसा

अमियकृष्णमिश्रः
साहित्यविभागीयः शोधच्छात्रः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
लखनऊपरिसरः

भारतदेशे प्रचलितेष्वनेकेषु धर्मेषु सम्प्रदायेषु च बौद्धधर्मः महत्त्वपूर्णरस्ति। अस्य संस्थापकः महात्मा बुद्धः अस्ति। बुद्धस्य व्यक्तित्वप्रभावेण भारतीयदर्शनेषु जनसमुदाये च बौद्धधर्मस्य सुप्रभावः संस्थापितर्बभूव। शनैःशनैर्बौद्धधर्म विकसितर्बभूव। बौद्धदार्शनिकाः साहित्यकाराश्चास्य बौद्धधर्मस्य विकासे महान् योगदानं चक्रुः। तेषु काव्यकारेषु अश्वघोषः महत्त्वपूर्णरस्ति। सः बौद्धधर्मप्रचाराय कृतयः लिलेख। सः स्वकृतिषु बौद्धधर्मस्य सिद्धान्तानि वर्णयामास। कालान्तरे मतभेदात् बौद्धधर्मः द्वयोः शाखयोः विभक्तर्बभूव-

(1) हीनयानम् (2) महायानम्

महायानानुयायी अश्वघोषः निजकृतिषु महायानमतस्य सिद्धान्तानि वर्णयामास। तस्य कृतिषु महायानशाखायाः तत्त्वान्वेषणप्राक्महायानशाखायाः सिद्धान्तानि ज्ञेयानि संति। अतः प्रथमतः महायानशाखायाः परिचयः निम्नवदस्ति-

(1) महायानशाखापरिचयः- उद्भवः विकासश्च

बौद्धधर्मस्य प्रगतिशीलाशाखा महायानमस्ति। प्रायः मन्यते यत् हीनयानस्य दोषाणां प्रतिकाररूपेण महायानं विकसितं बभूव। अस्याः शाखायाः उद्भवविषये आचार्यनरेन्द्रदेवः लिलेख - "बुद्धचरित से प्रभावित होकर बौद्धों में एक नवीन विचार पद्धति का उदय हुआ। अष्टांगिक मार्ग की जगह पर बोधिसत्वचर्या का विकास हुआ और इस समुदाय का आदर्श अहत्त्वं न होकर बोधिसत्व हुआ, क्योंकि भगवान बुद्धत्व की प्राप्ति के पूर्व तक "बोधिसत्व" थे । बोधिसत्व उसे कहते हैं जो सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति चाहता है । जिसमें सम्यक् ज्ञान है उसी के चित्त में जीवलोक के प्रति करूणा का प्रादुर्भाव हो सकता है। इस नवीन धर्म का नाम महायान पड़ा।"

महायानशाखायाः उद्भवविषये-डॉ.ममतामिश्रालिलेख -

"हीनयान धर्म की संकीर्णता एवं अव्यावहारिकता में ही महायान धर्म का बीज अन्तर्भूत था। महायान का उद्गम वस्तुतः बौद्धधर्म की दूसरी संगीति में ही हुआ। कालान्तर में नास्तिकतावश

हीनयान सम्प्रदाय अलोकप्रिय हो गया। यह जनता को अप्राप्य था । बौद्ध धर्म के समर्थकों के कुछ अनुयायियों ने हीनयान सम्प्रदाय के विपरीत एक दूसरे सम्प्रदाय को जन्म दिया जो जनसाधारण के मस्तिष्क और हृदय को सन्तुष्ट कर सके। इस सम्प्रदाय का नाम महायान पड़ा। इस सम्प्रदाय को सहजयान भी कहा जाता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इस के सिद्धान्तों को हृदयंगम सुगमता से कर सकता है।''

डॉ. ब्रजमोहनपाण्डेयः "नलिनः" लिलेख -

''महायान के प्रवर्तन में महासांधिक तथा उस की शाखाओं का विशेष योगदान रहा है। महायान बुद्धत्व में विश्वास रखता है तथा बुद्ध को सर्वथा लोकोत्तर मानता है।''

महायानमतस्य सिद्धान्तानि- "महायानाविधर्मसंगतिसूत्र"-ग्रन्थे असंगः महायानशाखायाः सप्तवैशिष्ट्यानि वर्णयामास -

(1) महायानं विस्तृतमस्ति।

(2) इदं मतं सर्वजीवेभ्यः प्रति अनुरागसमर्थकमस्ति।

(3) विषयीविषयोः परमतत्त्वस्य निषेधं कृत्वा केवलं चैतन्यमैव मन्यते ।

(4) मानवस्य आदर्शः बोधिसत्त्वप्राप्तिरस्ति। सर्वसांसारिकजीवेभ्यः निर्वाणप्रदातुं बोधिसत्त्वं समर्थमस्ति।

(5) उपायकौशलयोः अनुसारेण मानवानां मत्यानुसारेणैव बौद्धिकस्तरानुसारेण वा बोधिसत्वमुपदेशयामास।

(6) महायानमतस्य अन्तिमोद्देश्यं "बुद्धत्वप्राप्तिः" अस्ति।

(7) जगतः सर्वेषां जनानामाध्यात्मिकावश्यकतापूरणे बुद्धः समर्थोऽस्ति।

(8) महायानमते अवतारवादः महापुरूषाणां लोकोत्तरतापि स्वीकृतास्ति।

महायानमतस्य महती विशेषता त्रिकायवादः अस्ति। महायानमते चत्वारः ब्राह्मविहाराः मन्यते- मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाश्च। महायानानुसारेण सर्वेजीवाः निर्वाणं लभेरन्। महायानमतस्य मूलावधारणास्ति यत् सर्वेजीवाः सुखिनः भवेयुः। सर्वेजीवाः सांसारिकबन्धनेभ्यः मुक्ताः भवेयुः। केवलमात्मकल्याणमेव न वरमपितु सर्वजनानां कल्याणं भवेत्। महायानमते बहूनि बोधिसत्वानि कल्पितानि सन्ति। त्रिकायवादोऽपि मान्यरस्ति। वस्तुतः महायानमते मानवीयगुणानां महती भूमिकामहत्त्वं चास्ति । महायानमते अलौकिकव्यक्तित्वरूपेण "बुद्धः" कल्पितरस्ति।

"सौन्दरनन्दकाव्ये'' एतेषां तत्त्वानां वर्णनं निम्नवदस्ति

(1) **बुद्धस्य अलौकिकव्यक्तित्ववर्णनम्**- महायानानुयानिनः जनेषु प्रभावस्थापनार्थ बुद्धस्य कल्पना अलौकिकव्यक्तित्वरूपे चक्रुः। ते अनुयायिनः स्वीकारयामासुः यत् महात्माबुद्धः जगतः कल्याणयाय अवतरितः अलौकिकव्यक्तित्त्वसम्पन्नः चासीत्। वस्तुतः जनतायां बौद्धधर्मस्थापनाय श्रद्धाविकासाय च महायानानुयानिनः बुद्धचरित्रे अलौकिकगुणानि कल्पयामासुः।

"**सौन्दरनन्द**" काव्ये अश्वघोषरपि बुद्धकल्पना वर्णनं च अलौकिकव्यक्तिरूपेण चकार, अलौकिकव्यक्तित्वरूपे च कल्पयामास।

यथा- बुद्धस्य जन्मकालीनालौकिकदशावर्णितास्ति

अहार्षीदु:खमार्तानां द्विषतां चोर्जितं यश:।
अचैषीञ्च नयैर्भूमि भूयसा यशसैव च॥2.16॥
दिवि दुन्दुभयो नेतुर्दीव्यतां मरूताविव।
दिदीपेऽभ्यधिकं सूर्य: शिवश्च पवनो ववौ॥ 2.54॥
सनगा च भू: प्रविचचाल हुतवहसख: शिवो ववौ।
नेदुरपि च सुरदुन्दुभय: प्रववर्ष चाम्बुधरवजितं नभ:॥3.9॥

(2) **जनकल्याणस्य भावना**- महायानसम्प्रदाये जनकल्याणस्य महती भावना विलसति। महायानानुसारेण धर्मस्य महती भावना "जनकल्याणभावना" अस्ति। जनकल्याणभावनाया: अभावात् कोऽपि धर्म: महान् न भवति। बुद्ध: निजजीवनं जनकल्याणायैव समर्पयामास्। सौन्दरनन्दम् महाकाव्ये राज्ञ: शुद्धोदनस्य जनकल्याणपरककार्यै: प्रजातिसंतुष्टासीत्, यथाश्वघोषर्लिलेख-

यस्य सुव्यवहाराच्च रक्षणायच्च सुखं प्रजा:।
शिश्यिरे विगतोद्वेगा: पितुरंकगता इव॥ 2.7॥

राजाशुद्धोदन: जनकल्याणैव रत: आसीत्-

नाकुक्षयेद्विषये तस्य कश्चित्कैश्चित्क्वचित्क्षत:।
अदिक्षत्तस्य हस्तस्थमार्तेभ्यो ह्यभयं धनु: ॥2.23॥
आनृशंस्यान्न यशसे तेनादायि सदार्थिने। द्रव्यं महदपि त्यक्त्वा न चैवाकीर्ति किंचन ॥ 2.40॥

(3) **अवतारवाद:**- महायानमतेऽवतारवादोऽपि स्वीकृत: अस्ति। अस्मिनवतारवादे बुद्धस्य कल्पना अलौकिकव्यक्तित्वरूपेण कृता अस्ति। महायानानुसारेण संसारकल्याणायैव बुद्ध: जगत्यवतीर्णर्बभूव।

(4) **ब्राह्मविहारवर्णनम्**- महायानमते ब्राह्मविहारा: महत्त्वपूर्णा: सन्ति। ब्रह्मतुल्यतत्त्वेषु विहारैव ब्राह्मविहार: कथ्यते। ब्राह्मविहारसमावेशेन सामान्यजनोऽपि अलौकिकव्यक्तित्वान् भवितुमर्हति। ब्राह्मविहार-परिचय: निम्नवदस्ति-

(1) मैत्री - मित्रतैव मैत्री। अस्मिन् भावे विरोधशमनं भवति।
(2) करूणा- कस्यापि जनस्य दयनीयदशां विलोक्य सञ्जात: भावविशेष: करूणास्ति।
(3) मुदिता- जनानाम् सुकृत्यं दृष्ट्वा मनसि उत्पन्ना प्रसन्नतैवमुदितास्ति।
(4) उपेक्षा - अनभीष्टतत्वं प्रति तटस्थतैव उपेक्षेति।

"**सौन्दरनन्दकाव्ये**" एतेषां तत्त्वानां वर्णनं निम्नवदस्ति-

1. **मैत्री**- अविरोधमेवमैत्री। शुद्धोदनस्य विरोधः केनापि सह नासीत्। सः सर्वेभ्यः जीवेभ्यः प्रति दयालुः मैत्रीवान् आसीत्। सः सर्वेषां जनानां मैत्रीविषये विचारयामास। अस्मिन् विषये अश्वघोषः लिलेख-

सौहार्ददृढभक्तित्वान्मैत्रेषुविगुणेष्वपि।
नादिदासीददित्सीत्तु सौमुख्यात्स्वं स्वमर्थवत् ।।2.18।।
तेनारिरिपि दुःखार्तो नात्याजिशरणागतः।
जित्त्वा दृप्तानपिरिपून्न तेनाकारि विस्मयः ।।2.41।।

2. **करूणा** - अश्वघोषः राजाशुद्धोदनस्य कारूणिकस्वभाववविषये लिलेख-

अप्यासीद्दुःखितान्पशान्प्रकृत्या करूणात्मकः ।।2.17।।

बुद्ध महाकारूणिकोऽासीत्। सः नन्दस्य प्रति करूणावानर्बभूव-

दीनं महाकरूणिकस्ततस्तं दृष्ट्वा मुहूर्ते करूणायमानः ।।5.21।।

3. **मुदिता**- परेषां जनानां सद्कर्माणि द्रष्टवा जाता प्रसन्नतैव मुदिता कथ्यते। एवंप्रकारेणापि परोपकारिणः प्रोत्साहिताः भवन्ति। अस्यहेतोः शुद्धोदनः विदुषान् उपासयामास यतोहि ते प्रोत्साहिताः भवन्तु।

4. **उपेक्षा**- असम्बद्धविषयप्रतितटस्थतैवोपेक्षा। असम्बद्धविषयेषु मतिर्नविधेया। अश्वघोषः उपेक्षामपि वर्णयामास। बुद्धः सुखदुःखयोः उपेक्षावानासीत्-

सः पूजया प्रसन्नः न बभूव, अपूजया अप्रसन्नरपि न बभूव।
प्रतिपूजया न स जहर्ष न च शुचमवज्ञयागमत् ।।3.19।।

उपसंहारः- पूर्ववर्णनानुसारेण इदं स्पष्टं भवति यत् अश्वघोषः महायानमतस्य मौलिकसिद्धान्तानां महानप्रतिपादकः अस्ति । प्रथमतः सः एव महायानस्य सिद्धान्तानि वर्णयामास । वस्तुतः तस्य रचनाकर्मस्य मूलोद्देश्यं महायानमतप्रचारमासीत्। निजोद्देश्ये सः पूर्णसफलः अस्ति । सः महायानमतप्रतिष्ठापकः इव मन्यते।

सन्दर्भसूची

1. सौन्दरनन्दम्-अश्वघोषः, व्याख्याकारः- डॉ. करूणा शंकर दुबे, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 260, चौखम्भासंस्कृतसंस्थानम्-वाराणसी, प्रथमसंस्करणम् ईसवीयवर्षम् 1989
2. बौद्धधर्मदर्शन- आचार्यनरेन्द्रदेवः मोतीलालबनारसीदासः देहलीनगरम् पुनर्मुद्रणम्-ईसवीयवर्षम्, 2011
3. भारतीय दर्शन- डॉ. ममता मिश्रा, कला प्रकाशनम् वाराणसी प्रथमसंस्करणम ईसवीयवर्षम्, 1999
4. बौद्ध साधना और दर्शन- डॉ. ब्रजमोहनपाण्डेयः ''नलिनः'', अयनप्रकाशनम्, नवदेहली प्रथमसंस्करणम्।

"कालिन्दी" काव्यसङ्ग्रहस्य तत्कर्तुश्च परिचय:

डॉ. बृजेशकुमारत्रिपाठी (पी.एच.डी.)
अमियकृष्णमिश्र:
साहित्यविभागीय शोधच्छात्र:
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
लखनऊपरिसर:

विश्वस्य प्राचीनतमसाहित्यं संस्कृतसाहित्यमस्ति। आदिकालादेव संस्कृतसाहित्यकारा: स्वकृतिभि: जनान् प्रेरयन्तिस्म् । प्राचीनकाले आधुनिककालेऽपि च संस्कृतसाहित्यकारा: लोकानुरञ्जनाय साहित्यं रचयन्ति। आधुकिकालेऽपि बहव: कवय: देववाणीसेवारता: सन्ति। कवय: द्विविधकाव्यं रचयन्ति -

1. प्रबन्धकाव्यम्
2. मुक्तककाव्यम्

आधुनिकाले कवय: मुक्तककाव्यमपि रचयन्ति। यदृशेषु मुक्तककाव्यकारेषु डॉ. केशवप्रसादगुप्त: नवनवोन्मेषप्रतिभावान् आसीत्। आजीवनसंस्कृतसेवारत: स: बहव: संस्कृताध्येतृन्: अपि असृजत। अस्मिन् शोधपत्रेऽहं तस्य जीवनस्य तत् कृतेश्च परिचयवर्णनं करिष्यामि-

नाम: डॉ. केशवप्रसादगुप्त: **जनक:** मसुरियादीनगुप्त: **जननि** बदामी देवी

जन्मतिथि: 02-03-1951

जन्मस्थानम् ग्राम:-उदाथू (गढ़वा)
पत्रालय: -गौहावी बड़ी
जनपद: -कौशाम्बी (उ.प्र.) 212203

अस्य प्राथमिकशिक्षा स्वग्रामे एव सम्पन्नाबभूव। इलाहाबादविश्वविद्यालयात् स: स्नातक-परास्नातक-शोधोपाधिम् (पी.एच.डी.) लेभे। 1972 ख्रिस्तीवर्षात् स: शिक्षणमारभत्। 1985 ख्रिस्तीवर्षे शोधोपाधिम् (पी.एच.डी.) प्राप्तवान्। स्वगुरूभ्याम् प्रो.राजेन्द्रमिश्र, डॉ.इन्द्रदेवद्विवेदिभ्याम् प्रेरित: भूत्वा स: साहित्यरचनाकर्म आरम्भयामास। स: हिन्दीभाषायामपि कृतय: लिलेख। स: कौशाम्बीपर्यटनस्थलविकाससमिते: अपि अध्यक्ष: आसीत्। स: इलाहाबादजनपदान्तर्गतस्य घीनपुरस्थस्य आदर्श-उच्चतरमाध्यमिकविद्यालयस्य प्रधानाध्यापकपदात् सेवानिवृत्त:बभूव।

कर्तृव्यम्: संस्कृते -

1. कनीनिका (संस्कृतगीतिकाव्यम्)
उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य विशेषपुरस्कारेण पुरस्कृतम्
2. कल्लोलिनी (गीतिकाव्यम्)
उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य विशेषपुरस्कारेण पुरस्कृतम्
3. कौशाम्बी (खण्डकाव्यम्)
उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य विशेषपुरस्कारेण पुरस्कृतम्
4. कालिन्दी (गीतिकाव्यम्)
उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य विशेषपुरस्कारेण पुरस्कृतम्
5. केशवीयम् (संस्कृतलेखसंग्रह:)
उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानस्य विशेषपुरस्कारेण पुरस्कृतम्

हिन्दीभाषायाम्-

1. वसन्तविलास महाकाव्य का तत्त्वानुशीलन
2. श्री चन्दनबालाशतक
3. कौशाम्बी जनपद का आर्थिक भूगोल
4. कल्याणी (कविता संग्रह)

स: श्रीहुबलाल-आदर्शसस्कृतमहाविद्यालये (भरवार्यां कौशाम्बीजनपदे) ''शास्त्र चूडामणि:'' नियुक्त: बभूव। तस्य कवितापाठा:प्रयागस्थेन आकाशवाणीकेन्द्रेन प्रसारित:। तस्यकाव्यस्यमहती विशेषता गोपात्मकतास्ति। स: संगीतप्रधानसाहित्यं लिलेख।

सम्प्रतिऽहं ''कालिन्दी'' काव्यसंग्रहस्य विषयवस्तो: संक्षिप्तवर्णनं करिष्यामि-

1. देवस्तुति:-

''कालिन्दी''काव्यंग्रहे कवि: निजभक्तिभावनां अभिव्यक्तयामास। अस्मिन् काव्यसंग्रहे 131 गीतानि संकलितानि सन्ति। कवि: सरस्वतीगंगायमुनाहिमालयगोपालमोहन-मुरारिभारतमाताशिवसूर्यपवनपुत्रकृष्णगुरुतीर्थराजरामायणस्यपात्राणां च वर्णनमाकरोत्। वस्तुत: नदीपर्वतानां स्तुतिमाध्यमेन कवि: पर्यावरणसंरक्षणायापि उपदेशयामास। आसु स्तुतिषु सरस्वतीवन्दना ज्ञानार्जनप्रेरिकास्ति। सिंहवाहिनीहंसवाहिनीस्तुतिद्वारा कवि: वन्यजीवप्रकृतिसंरक्षणाय उपदेशयामास। ''हंसवाहिनी'' कवितायां कवि: स्तौति-

अम्ब! परमेश्वरि! हे हंसवाहिनी!
मात:! कुरू सज्ञानं सरस्वति
करोम्यहं ते ध्यानं, सरस्वति

कविः सिंहवाहिनीं स्तौति-

सुसिद्धिऋद्धिदायिनीं' समस्तकष्टाहरिणीम्।
नमामि सिंहवाहिनीं भजामिशूलधारिणीम्।

कविः सरस्वतीं स्तौति-

ममतामयिवाणि! महामहिते
स्वसुतं सुधियं सहसा कुरूषे।
करूणामयिदेवि! सरस्वती! नो
जननीव कवीश्वरि! हे! दयसे॥

''विन्ध्येश्वरि''शीर्षकवितायां कविर्लिलेख-

प्रणमामि वारं वारं विन्ध्येश्वरि!
सुखयसि जननि! संसरं, परमेश्वरि!!
हे! विन्ध्यवासिनि! तवैव भक्तया
सदा च मानवाः सुदृढ़निष्ठया!!
भवन्ति भवसिन्धुपारे!

2. **प्रकृतिवर्णनम्**-

काव्यसंकलनेऽस्मिन् कविः प्रकृतिवर्णनमपि आलम्बनोद्दीपनविभावयोः चकार। कविः गंगायमुना-मधुवनवर्षाहिमालयप्रभातऋत्त्वादिवर्णनं माधुर्यप्रसादगुणान्विताभाषायां चकार। अस्मिन् काव्यसंग्रहे प्रकृतिवर्णन पराः कविताः सन्ति-प्रकृतिं प्रति, प्रकृतिशरणम्, प्रकृतेः सुकृतम्, पर्यावरणम्, भूकम्पः, हिमालयः, सुप्रभातम्, प्रभातकालः, वर्षाऽऽगमम्, वर्षणम्, वर्षावैभवम्, वर्षाकाले मेघोगर्जति, शीतकालः, वसन्तागमनम्, पश्य वसन्तम्, मधुमासः, समागतोमधुमासः मदयति वसन्तागमनम्।

''गंगाष्टकम्'' कवितायां कविर्लिलेख-

दर्शनीयश्च तस्याः प्रवाहो ध्रुवं
येन दृष्टिर्जनानां समाकृष्यते।
तत्समीपस्थभक्तैर्जनैर्निश्चितं
तस्य दिव्यं नवं दर्शनं प्राप्यते॥

''यमुनाष्टकम्'' कवितायां कविर्लिलेख-

सम्पीयतोयमधुरं विशुद्धं
भ्रमन्ति कूले पशवः खगाश्च।
स्नात्वा जना यामुनवारिराशौ
नमन्ति देवं पितरं यमस्य ॥

प्रभापतंगस्य पतन्ति पुण्याः
प्रातर्यदा यामुननीलनीरे।
तदा मणीनां नवकुट्टिमेषु
सुवर्णरेखा इव भातिदृश्यम्।।

"प्रकृतिं प्रति" कवितायाम् कविर्लिलेख-

प्रववाति सुखं मधुरं सलिलम्।
पवनोऽपि करोति मनो विमलम्।।
प्रकृतिः सुतरां प्रमुदं तनुते।
भुवि को न जनः प्रकृतिं भजते।।

"प्रकृतिंशरणम्" कवितायां कविः प्रकृतिशरणप्राप्तये उपदेशयामास-

अवलोकय चारुतरां सुषमाम्।
प्रकृतेः शुचिताश्चमनोरमताम्।।
कुरूषे नहि किं प्रकृतेर्वरणम्।
भज रे! त्वरितं प्रकृतिं शरणम्।।

यमुनावर्णनम्" कवितायां कविर्लिलेख-

अहो! जले व्योम समागतं किं करोति नेत्रे सफलं प्रकामम्
सूर्यश्च चन्द्रो नवनीरवाहा गर्भे हि नद्या नितरां विभान्ति।।

3. भारतगौरववर्णनम्

स्वकाव्यसंग्रहे कविः भारतस्य गौरववर्णनमकार्षीत् ।

"स्वदेशगौरवम्" कवितायां कविर्लिखति-

अन्नराशौ सुवृद्धिं समायाति नः।
(उद्यमे) संरताः सन्ति सूद्योगिनः।।
वर्द्धते भारतस्यार्थिकं गौरवम्।
आर्यभूमिर्विधत्ते नवं गौरवम्।।

कविः नवभारतम्, मामकं भारतम्, भारतं वर्द्धते, भारतमातः, स्वकीयं ग्रामम् आदिषु कवितासु निजदेशभक्तिः प्रदर्शयामास।

"नवभारतम्" कवितायांकविर्वर्णयति-

गीयते यस्य गीतिर्धरायां मुदा ।
शस्यते संस्कृतिर्यस्य लोके सदा।।
द्योतते तस्य नीतिः शुभाऽनारतम् ।
राजते भूतले मे नवंभारतम्।।

''स्वकीय ग्रामम्'' कवितायां-

कुञ्ज निकुञ्जे सुषमाऽत्र विलसति।
शीतलसुरम्यः समीरोऽपिवाति।
सलिलं सुमधुरं ननु सेवानीयम्।
संपश्याधुना ग्रामं स्वकीयम्॥

4. **गुरूमहात्म्यम्**

''कालिन्दी''संग्रहे कविः निजगुरूभक्तिरपि प्रदर्शितवान्।

''गुरूवर'' शीर्षकवितायाम् कविर्लिलेख-

गुरूवर! जाने तव महिमानम्।
उन्नमनार्थं शिष्यजनानां,
तेन दीयते ध्यानम्॥
गुरोः प्रभावाद् बहुचिन्तानां
भवति कदापि न भानम्॥

''सद्गुरुः'' शीर्षकायां कवितायाम् कविर्लिलेख-

हे! दयानिधे! त्वया प्रदत्ता विद्याऽतीव पुनीता।
कृपाभावतस्तवैव गुरूवर! सद्बुद्धिः सञ्जाता॥

5. **साम्प्रतिकसमस्यावर्णनम्-**

''कालिन्दी' काव्यसंग्रहे कविः साम्प्रत्यिकसमस्याः अपि अवर्णयत्।

''आतंकवादः'' शीर्षककवितायाम् कविर्लिलेख-

आतंकवादो दहति संसारम्।
पश्चतु खलानां कुत्सितविचारम्॥
शंकाविहीनाः शस्त्रप्रयोगैः।
क्रूराः प्रहरन्ति ते मनोयोगैः॥
कुर्वन्ति लोके घोरसंहारम्।
आतंकवादो दहति संसारम्॥

एवं प्रकारेण वयं श्यामः यत् कविर्केशवप्रसादगुप्तः सचेतः रचनाधर्मीकविः आसीत्। सः सवर्तमानसमस्यानामपि प्रतिसचेतो आसीत्। सः लोकानुरञ्जनेन सह समस्यानाम्प्रतिध्यानं आकृष्टयामास।

सन्दर्भः

कालिन्दी-डॉ. केशवप्रसादगुप्तः, संरचना प्रकाशनम्, इलाहाबदनगरम् प्रथमसंस्करणम् 2017 ख्रिस्तीयम्, ISBN: 978-93-84999-19-3

श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाग्रन्थस्य केचन विशेषाः

डॉ. भुवनेश्वरी भारद्वाज

निगमागमश्रुतिसमर्चके[1][2] श्रीभारते भारते विद्यानामुत्तमामध्यात्मविद्या[3] भगवत्स्वरुपभूतामङ्गीकुर्वाणे विलसन्ति किल विविधानि दर्शनानि नानाप्रस्थानभेदसम्भिन्नानि - वैदिकं[4] तान्त्रिकं5 तार्किकं6 चेति नामभिः संविभक्तानि । साक्षात् परम्परया वा श्रुत्युपजीविनामेषां विद्यते किल अधिकारिभेदेन माहात्म्यं सुमहत्। सद्विद्याधर्ममण्डितानामेषां दर्शनानामध्यात्मसुबोधाय प्राचीनतमा अनाद्यनवच्छिन्ना सिद्धैः साधकैश्चाभिमण्डिता श्रीमदन्नपूर्णाजानिविश्वेश्वरसमाश्रया श्रीकाशी[7] हरसिन्धु[8]समाख्या विजयते ।

सैषा दिव्या अधिभारतवर्ष व्याप्नुवाने कामरुपम्, काश्मीरम्, केरलमिति प्रथिताभिधाने त्रिकोणके केन्द्रतया स्थिता श्रीकाशी अनुत्तरशिवाह्लादं व्यातन्वती विजयते । एनामेव श्रीकाशीं परमं तत्त्वमनुत्तराख्यं वेदितुं साक्षात्कर्तुं च मानभूमिं संगिरन्ते सुधियः ।

सामान्यस्य लौकिकवस्तुनः का कथा अनुत्तरमहेश्वरसमावेशस्यापि लाभः श्रीविश्वनाथ-समर्चया सुशकः।[9] यां नित्यं वनुते सर्वार्थं विश्वेश्वरोऽपि तस्याः श्रीमातुः अन्नपूर्णायाः प्रत्यभिज्ञाया : विषये किमु वा वक्तव्यम् ?[10]

शिवः प्रकाश इत्याख्यायते शक्तिर्जगदम्बा तु विमर्शः स्वातन्त्र्यमिति वा। यथा लोके वह्निः स्वभावी दाहस्तु तस्य स्वभावः तथैव स्वभाविनः शिवस्य स्वातन्त्र्यं शक्तिः स्वभाव इत्याख्यायते। स्वभावस्वभावितया सतोरनयोः विभिन्नसंज्ञया प्रथितयोरपि वस्त्वनैक्यमेव विजृम्भते। काश्मीरकाः शिवशक्त्योः सामरस्यमेतत् संविदमाहुर्विश्वकारणम्[11] अस्यामेव संविदि प्रकाशात्मस्वात्ममहेश्वरे भावाभावात्मकं सर्वं जगद् अभेदे भेदाभेदेन वा प्रतिबिम्बतया स्थितं भासते । प्रतिबिम्बनं चैतत् स्वातन्त्र्यमहिम्ना संघटते । अप्रतिघातिस्वेच्छाविकासे विश्राम्यति। स्वातन्त्र्यमहिम्नैवायं स्वयम् प्रकाशताम्, परात्मना वा प्रकाशतां, तदुभयम् अस्य प्रकाशमानता इत्याख्यायते। अकृत्रिमे परप्रमातरि या स्वतो निर्भासना, या वा निर्भासना नीलादेः एतदुभयं क्रियाशक्तिः भगवतः । क्रियाशक्तिमति महेश्वरे संविदिति संवेदनमिति बोध इति विज्ञानभैरव इत्येवमादयः शब्दाः शास्त्रैः प्रयुज्यन्ते । तत्र चावभासते इत्येवमात्मा तु क्रियाभागमात्रप्रतीतिरुपा विद्यते। विमृशामि-इत्येवमात्मा तु क्रिया समस्तांशस्फुरणात्मा प्रशस्यतेदेवम् प्रकाशस्य यत् स्वातन्त्र्यं तत्र अवभासस्य धर्मतया विमर्शस्य तु धर्मितया भानं भवति। आगमदर्शने विमर्शः विमर्शनं शब्दनं चेति समानार्थाः शब्दाः प्रथन्ते । विमर्शश्चायं स्वविषयको भवेद्

इदं नीलमित्याद्यात्मा भिन्नविषयको वा भवेदुभयात्मनो विमर्शस्य प्रमातरि एव विश्रामो भवति । स्वयं निर्भासेत, नीलादिकं वा निर्भासयेदित्यत्र निर्भरं स्वातन्त्र्यं संविदः। एकार्थको भिन्नश्रुति : शब्दः पर्याय इत्युक्तनयेन[12] विमर्शः, अमर्शः, चितिः, प्रत्यवमर्शः, शब्दनं, हृदयं, परा वाक्, स्फुरत्ता, स्फूर्तिः, स्पन्दः, उन्मेषः शब्दनमित्येवमादिभिः शब्दैः स्वातन्त्र्यशक्तिरेव प्रथते। सैषा विवृतिविमर्शिन्यां निभृतं स्तूयते-

सर्वत्र भावपटलेन विजृम्भमाणविच्छेदशून्यपरमार्थचमत्कृतिर्या ।

तां पूर्णवृत्त्यहमितिप्रथनस्वभावां स्वात्मस्थितिं स्वरसतः प्रणमामि देवीम्।।[13]

तस्याश्चैतस्याः स्वातन्त्र्यशक्तेः बलेन संविदि समस्तवेद्यवर्गः प्रतिबिम्बतया भासते । न च संविदः अचिन्त्यविभवायाः अनाकृतेरपि विश्वाकृतेः विश्वभावस्वरुपायाः देशकालाद्यवच्छेदशून्यायाः सम्पूर्णो महिमा शेषसहस्रेणापि सामस्त्येन शक्यते वक्तुम् । यदुक्तम्-

नियत्यतिक्रमादेषा संविद् या विश्वरुपिणी ।

देशकालाद्यवच्छेदवर्जिता व्यापिका मता।।

आद्यन्तवर्जिता नित्या विश्वाकृतिरनाकृतिः ।

निरपेक्षाऽस्त्यतः पूर्णा स्वतन्त्रा सर्वभासिका।।

विश्वभावस्वरुपासौ स्वातन्त्र्यरसनिर्भरा।

अचिन्त्यविभवा पूज्या माहैश्वर्यादविच्युता।।

यस्यां संविदि सर्वोऽयं वेद्यवर्गो विभासते।

प्रतिबिम्बतया सोऽहं सर्वेश्वर : शिवः।। इति[14]

स्वातन्त्र्यशक्तिः स्वात्मानि सर्व प्रकाशयति स्थापयति विलापयति नात्र किञ्चिद् अप्रातीतिकं किञ्चिद् अविद्यादिकम् अन्यद् अपेक्ष्यते ततो नात्र न लेशतोऽपि द्वैतस्याङ्गीकारविवशता समापतति।

स्वात्ममहेश्वरः क्रीडालीलाविलसित : स्वशक्त्या विचित्रतनुकरणभुवनसन्तानं विषयमेतत् आरचयति। विमलतमबोधभैरवे प्रतिबिम्बभूतं जगदेतद् बोधाद् अन्योन्यं च विभक्ततया यद् आभाति तदेतत् सर्व विमर्शशक्तेरेव माहात्म्यम् । यथोक्तम् -

विमर्शो हि सर्व सह आत्मानमपि परीकरोति, परमप्यात्मीकरोति द्वयमप्यङ्गीकुरुते, उभयमपि न्यग्भावयति-इति।[15]

सर्वस्वच्छे महेश्वरदर्पणे सर्व भावाभावात्म विश्वं यत् प्रतिबिम्बति तत्र बिम्बस्थानीयं निमित्तकारणं स्वातन्त्र्यशक्तिर्भवति दण्डस्थानीयं कराङ्गुलिरिव। शक्तिश्च शिवस्वभावा यतः ततः स्वभावस्वभाविनोर्नैक्यम इति हेतोः नाद्वैतहानिः । यथोक्तम् -

निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते ।

जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने।। इति[16]

चिदानन्दमये स्वाङ्गे विश्वालेख्यविधायिने।
सर्वाद्भुतोद्भवे भूम्यै नमो विषमचक्षुषे ।।
स्पन्दस्य संविदः स्तुत्यं कृत्यं स्वाभाविकं महत् ।
ईशंयोऽनन्तरुपेण भासयेन्नावरोधयेत् ।।
जनानां जीवने व्यापि घटते साधुयुक्तिका ।
जायतेऽस्तीतिभावानां भिन्द्यान्नैक्यं विकारिता।। इति च

वस्तुतः कारणता शिवस्यैव विद्यते । घटादिकं प्रति मृदादेर्याकारणता युक्तिभिः न्यायवैशेषिकदर्शनयोः प्रतिपादिता सा बालानाम् उपलालिकैव ज्ञेया । यतो हि मृत्तिका वा दण्डो वा चक्रो वा स्वत : सामर्थ्यराहित्याद् घटं प्रति कारणं भवितुं नैवार्हति। अथोच्यते अन्योन्यापेक्षया मृत्तिकादिसंघातस्य घटं प्रति कारणता अभ्युपेयतामिति तदपि न युक्तिसहम् । अपेक्षा तावद् जडभूतेषु मृत्तिकादिसंघातघटकेषु चेतनाधिष्ठानं विना कथमिव सम्भवेत् । अथ मास्तु जडेषु अपेक्षा कुलाले तु कर्त्तरि सा अपेक्षा सम्भवतीति चेत् सत्यम् ; किन्तु विचार्यताम् घटं प्रति अपेक्षया युक्तः कुलालः उपादानगोचरापरोक्षज्ञानादिमान् यथा कारणं भवितुमर्हति तथैव जगत् कार्य प्रति उपादानविशेषज्ञो महेश्वरः कारणं वक्तव्यम् । परं वैषम्यनैर्घृण्ये तावदपाकर्तुं जगद्वैचित्र्यहेतुकं जीवकर्मापि अपेक्ष्येत। व्याकरणदर्शने काश्मीरशैवदर्शने च जीवकर्मसापेक्षता जगत्कार्यं प्रति ईश्वरे न स्वीक्रियते। तथात्व-स्वीकारे महेश्वरस्य पूर्णस्वातन्त्र्यं भज्येत ।

अतः लीलाक्रीडारसिको महेश्वरः अनन्यमुखप्रेक्षित्वरुपं पूर्णं स्वातन्त्र्यं यजमानः सर्वथा निरपेक्षः स्वशक्तौ स्थितं भावाभावात्मकं जगत्, दर्पणे प्रतिबिम्बवत्[17] स्वात्मन्येव भित्तिभूते भासयतीति चिदानन्दैषणाजुष्टोमहेश्वरः सर्वथा स्वतन्त्र एव पञ्चकृत्यपरायणो जगत् सृजति, पालयति, विलापयति, तिरोधत्ते परमं प्रधानं चानुग्रहं कृत्यं विदधाति । यथोक्तम् -

अनादिमति संसारे कारणं परमेश्वरः।
स्वभावेनैव जन्तूनामनुग्रहपरः सदा ।।
अनुग्रहस्तु यः सोऽयं स्वस्वरुपे विकस्वरे ।
ज्ञात्यात्मेति कथं कर्म नियत्यादि प्रतीक्षते।।
कर्मकालनियत्यादि यतः संकोचजीवितम् ।
संकोचहानिरुपेऽस्मिन् कथं हेतुरनुग्रहे ।। इति च[18]

कार्यकारणभावव्यवस्थापनावसरे सूक्ष्मान् दार्शनिकविचारान् पुरस्कृत्य श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकृता निपुणं निर्णीतम् शिवस्यैव स्वातन्त्र्येण कर्तृत्वं कारणत्वं चेति । तद्यथा -

निर्मिमीते घटं नैव मृत्तिका दण्ड एव वा ।।
चक्रो वा केवलं किञ्चित् सामर्थ्यरहितत्वतः ।

अन्योन्यापेक्षया तेषां निर्मातृत्वं यदुच्यते ॥
साऽपेक्षा मृत्रिकायां वा दण्डेऽन्यस्मिञ्जडेऽपि वा।
न वक्तुं शक्यते तस्याश्चेतनेष्वेव दर्शनात् ॥
तस्मान्मृदादिसापेक्षः कुलालश्चेतनो भवेत् ।
घटोत्पत्तिक्षणात् पूर्वं कारणं समुपस्थितः॥
यद्वदपेक्षया युक्तः कुलालः कारणं तथा ।
उपादानविशेषज्ञो जगत्कार्यं प्रतीश्वरः ॥
तत्रापेक्षते कर्मापि जगद्वैचित्र्यहेतुकम् ।
न्यायदर्शनसिद्धान्ते कारणं नो न युज्यते॥
शाब्दिकः प्रत्यभिज्ञाविद् विजानीत उभौ यतः।
कर्तारं सुस्वतन्त्रं तत्त्वापेक्षान्यस्य तन्मते ॥
पूर्णस्वातन्त्र्यभङ्गः स्यादीश्वरोऽपेक्षतां यदि।
स्वतन्त्र ईश्वरः कर्मनिरपेक्षो जयेत् स्वयम् ॥
निरुपादानसम्भारः कारणं त्रिकदर्शने ।
लीलाक्रीडास्वभावोऽयं जगत्पृष्ट्यादिकर्मकृत ॥ इति[19]
स्वशक्तौ संस्थितानेष स्वात्मन्येवावभासयेत् ।
भावान् सूक्ष्मान् तथा स्थूलान् दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ॥
जीवाः सन्ति मिथो भिन्ना मानमेयमयं जगत् ।
मिथो भिन्नं विभात्वेतद् नेश्वराद् विद्यते पृथक् ॥
ईशशक्तौ स्थितं विश्वं प्रतिबिम्बं बहिः स्थितम् ।
मिथो न भिद्यमानं चेद् ईश्वराद् भिद्यतां कथम्॥ इति[20]
कर्तृत्वमीश्वरस्यैव सर्वत्र प्रविजृम्भते।
गुप्तेन गुरुणैतद्धि वार्तिके प्रकटीकृतम्॥[21]
नहि कुम्भकृतः क्वापि कदाचित् कर्तृता भवेत् ।
यदि नासौ महेशाख्यात् कर्तुरव्यतिरेकभाक् ॥ इति च

सन्दर्भाः पादटिप्पण्यश्च

1. निगमानागमान् वन्देऽनादिवाचो महेश्वरी :
शाश्वतीर्महतीः सत्याः शास्त्राणां प्राणदायिनीः॥
श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका-17

2. श्रुतिद्वैविध्यमाख्यातं वेदतन्त्रविभेदतः।
सर्वशास्त्रसमाराध्यं पूजितं सदभिरादरात् ।। तदेव - 20
3. विद्यानामात्मविद्यायाः प्रशंसा भगवत्कृता।
विद्वद्भिः सा तत : सर्वैर्विवृता बहुयुक्तिभिः।। तदेव-27
4. सांख्ययोगौ तथा न्यायवैशेषिकौ द्वयीचया ।
मीमांसा चेति षट् प्राहुः श्रौतानि दर्शनानि हि ।। तदेव-101
5. काश्मीरशैवसिद्धान्तशैवो वीरस्तथैव च।
त्रिप्रभेदं भवेच्छैवं वैष्णवं द्विविधं स्मृतम् ।।
वैखानसं तथा पाञ्चरात्रं प्रस्थानकद्वयम् । तदेव-103-104
6. तार्किकाणि दर्शनानि चार्वाकजैनबौद्धकम् ।
विभाषदृक् च सूत्रात्मा योगाचार : सुमध्यमः।।
बौद्धप्रस्थानभेदास्तु चत्वारः कीर्तिता इमे । तदेव- 104-105
7. विश्वस्मिन् विदिता विश्वे श्रद्धया सद्भिरीड्यते।
धर्माणामथ विद्यानां बोधिका काशिका जयेत् ।। तदेव-32
8. तटेष्वेव परिभ्रान्तैर्लभ्यन्ते बहुभूतयः ।
यस्य श्रीमहसे तस्मै नमोऽस्तुहरसिन्धवे।। तदेव-31
9. का न सम्पन्न का सूक्तिः का न भुक्तिः स्तुतिर्न का।
न का मुक्तिरहो देवो विश्वनाथो यदर्च्यते।। तदेव-66
10. सर्वार्थविधिसम्पत्त्यै शर्वो या वनुते सदा।
श्रीविश्वेशयशो गातुं तामीशवनितां श्रये ।। तदेव-76
11. शिवः प्रकाशः इत्युक्तो विमर्श : शक्तिरेव हि।
शिवः स्वभावी यस्मात् ततः शक्तिं जहाति नो। तदेव-88
12. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 2/3/13
13. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 2/3/7
14. श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका 285-288
15. आगमसंविद् पृ.-52
16. तुलनीयम् - श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका-521
17. रुपस्वच्छो यथादर्शे बिम्बयेत् सर्वरुपकम् ।
विश्वं प्रकाशयेत् सर्वं विश्वस्वच्छस्तथा शिवः।।
-श्रीमातृप्रत्याभिज्ञाकारिका-595

18. श्रीतन्त्रालोक: 28/234-235
19. श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका 513-521
20. श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका 524-526
21. श्रीमातृप्रत्यभिज्ञाकारिका 500-501

डॉ. भुवनेश्वरी भारद्वाज
असिस्टेंट प्रोफेसर
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

उत्तरप्रदेशसर्वकारेण पुरस्कृतम् अस्माकं प्रकाशनम्

नैषधीयचरितोपज्ञं

चार्वाकमतविवेचनम्

लेखकः
डॉ. पवनकुमारः

सम्पादकः
प्रो. रामलखनपाण्डेयः
साहित्यसंकायाध्यक्षः



साहित्यविभागः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(NAAC द्वारा 'ए' श्रेण्या प्रत्यायितो मानितविश्वविद्यालयः)
लखनऊपरिसरः



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

NAAC द्वारा 'ए' श्रेण्यां प्रत्यायितो मानितविश्वविद्यालयः
लखनऊपरिसरः, विशालखण्डः–4, गोमतीनगरम्
लखनऊ–226 010 (उत्तरप्रदेशः)

ISSN 2349-851X